साहित्य

राजा राममोहन राय

सौम्येन्द्रनाथ टैगोर

H
923.654
R 812 T

राजा राममोहन राय आधुनिक भारत के पिता, संसार में तुलनात्मक धर्मशास्त्र के अध्ययन के प्रथम प्रामाणिक शोधकर्ता, अपने समय के एक श्रेष्ठ समाज-सुधारक, विश्वात्मक मानवतावाद की कल्पना के उद्‌गाता और नव-युग के भविष्यद्रष्टा माने जाते हैं। जीवन के विविध क्षेत्रों में उनका योगदान सचमुच विलक्षण था, फिर भी यह सर्वसाधारण को विदित नहीं है कि बंगला गद्य की तर्कप्रधान शैली के वे प्रथम लेखक थे। कविता से भी उनकी लेखनी अपरिचित नहीं थी : भगवद्‌गीता का बंगला पद्य में उन्होंने अनुवाद किया और कुछ भजन भी रचे। उनके बंगला व्याकरण से उनका अपनी मातृभाषा पर अधिकार सुप्रसिद्ध है। यह व्याकरण उनके समय की ही सर्वोत्तम रचना नहीं, बल्कि बाद के प्रयत्नों में भी सर्व-श्रेष्ठ है। उनका कई पूर्वी और पश्चिमी भाषाओं पर प्रभुत्व था, जिससे वे ऐसी शैली निर्मित कर सके जो सहज, सरल, सीधी अभिव्यक्तिपूर्ण है।

सौम्येन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा मूलतः अंग्रेज़ी में लिखित राजा राममोहन राय के जीवन और कार्य पर यह आलेख सिद्ध करता है कि वे आधुनिक भारतीय साहित्य में एक नवयुग-निर्माता थे।

२.५०

CATALOGUED

राजा राममोहन राय

भारतीय साहित्य के निर्माता

राजा राममोहन राय

लेखक
सौम्येन्द्रनाथ टैगोर

अनुवादिका
शुभा वर्मा

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

Raja Rammohun Roy : Hindi Translation by Shubha Varma of Saumyendra Nath Tagore's English monograph. Sahitya Akademi, New Delhi (1972) Price Rs. 2.50 .

Library IIAS, Shimla
H 923.654 R 812 T
00054736

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No 54736
Date 9.7.76
SIMLA.

H
923.654
R812 T

प्रथम संस्करण : १९७२

© साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे

मुद्रक :
भारती प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

क्रम

१.	भोर के पहले का अँधेरा	७
२.	जन्म और प्रारम्भिक संघर्ष	६
३.	कलकत्ता मिशन	१४
४.	ईसाई पादरियों के साथ विवाद	१७
५.	शैक्षिक सुधार	२७
६.	बंगला-गद्य के जनक	३१
७.	बंगला में ध्रुपद गीत	३३
८.	राजनीतिक सुधार का उत्साह	३४
९.	प्रवर्त्तक पत्रकार	४१
१०.	आर्थिक सुधार	४३
११.	ब्रह्मसभा और ब्रह्मसमाज	४६
१२.	राममोहन इंग्लैण्ड में	५१
१३.	राममोहन का प्रभाव	५६
१४.	महत्त्वपूर्ण तारीखें और घटनाएँ	५९
१५.	ग्रन्थ-सूची	६१

भोर के पहले का अँधेरा

आधुनिक भारत के इतिहास का अत्यधिक अंधकारमय युग, पुराना समाज और राजतंत्र तहस-नहस हो चुका था। उसके अवशेष चारों ओर बिखरे पड़े थे। कोई ताक़त नहीं थी जो इन विकृतियों को खत्म कर दे। पुरानी बुनियाद पर नई स्थापना का प्रयत्न भी नहीं हो रहा था। मरी हुई परम्पराएँ, जड़ हो चुके रिवाज़ और मूर्खतापूर्ण कट्टरता देश की जीवनी-शक्ति सोख चुके थे, निर्मम अन्धकार चारों ओर बिखरा हुआ था। व्यर्थता और शुष्कता के इसी आरम्भ में राममोहन राय का पदार्पण हुआ।

महान् व्यक्ति समय की संकेन्द्रित सृजनात्मकता का केन्द्र-बिन्दु रहे हैं। यह सृजनात्मकता अदृश्य रूप से मानव-सभ्यता के इतिहास का संचालन करती है। जाति के सांस्कृतिक इतिहास की निरन्तरता से उदय का विरोध कभी नहीं रहता और इतिहास मानव-व्यक्तित्व से सृजित होने के साथ-साथ उसका सृजन भी करता है।

समय की मांग को समझने की सूझ-बूझ, ऐतिहासिक प्रवाह के सार को ग्रहण करने की क्षमता और अन्त में काम को समाप्त करने के लिए महत्तम सृजनात्मक प्रयास के दृढ़ संकल्प पर मानव-व्यक्तित्व की महानता और सफलता निर्भर करती है। अपने सृजनात्मक क्रिया-कलापों की प्रक्रिया में व्यक्ति विरोधी बातों का एक अजीब मिश्रण बन जाता है। एक ओर वह बेहद तटस्थ रहता है तो दूसरी ओर अपने में बेहद डूबा हुआ। तटस्थ रहता है तो उसके अहं का एक ज़र्रा भी उसके आदर्श के रास्ते में नहीं आता, अपने में डूबा हुआ होता है तो आदर्श और अहं के बीच की दूरी मिट जाती हैं। मानव-इतिहास में यह एक असाधारण बात है। लेकिन इसकी आवृत्ति बार-बार होती है।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राममोहन राय भारतीय इतिहास के रंगमंच पर आए। मुग़ल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था। व्यापारी की हैसियत से आये अंग्रेज धीरे-धीरे सत्ताधारी बनते जा रहे थे। पन्द्रह साल पहले, १७५७ में प्लासी की लड़ाई ने बंगाल के भाग्य पर पहले ही मुद्रा लगा दी थी।

लेकिन इधर-उधर फैली अराजकता के बावजूद एक नवीनता धीरे-धीरे पनपने लगी थी। अंग्रेजों के माध्यम से पश्चिम, मात्र व्यापार की दृष्टि से भारत नहीं आया था। भारतीय इतिहास को एक नया रूप देना भी पश्चिम का एक उद्देश्य साबित हुआ। पश्चिमी प्रभाव ने भारत को उसकी जड़ता से मुक्त कर दिया। जागृति की एक नई लहर उसमें प्रवाहित की।

मुसलमानों के भारत में आने के बाद बहुत-से कल्पनाशील व्यक्ति हिन्दू और इस्लाम धर्मों का समन्वय करने के लिए अवतरित हो चुके थे। यह एक ऐतिहासिक ज़रूरत थी। दादू, कबीर, गुरु नानक और पथ के दूसरे अन्वेषियों का समूह इस महान् कार्य में अपना योगदान दे चुका था। समन्वय बाहरी परिवर्तनों से सम्भव नहीं, विभिन्न तत्त्वों की आन्तरिक पारस्परिकता—सहयोग, मैत्री, एकता—से ही यह सम्भव हो सकता है। पश्चिम के साथ देश का समन्वय उस समय की प्रमुख माँग थी और इतिहास के उस विशेष काल में राममोहन राय भारत के भाग्य-विधाता सिद्ध हुए।

जन्म और प्रारम्भिक संघर्ष

राममोहन राय का जन्म २२ मई, १७७२ को राधानगर गाँव में हुआ था। तब राधानगर बर्दवान ज़िले के अन्तर्गत आता था। बाद में इसे बंगाल के हुगली ज़िले के उपविभाग आरामबाग के अन्तंगत कर दिया गया। खानकुल कृष्णनगर के उत्तर में बना हुआ एक छोटा-सा गाँव था। खानकुल कृष्णनगर तब एक सम्पन्न और अपने जमाने का मशहूर गाँव माना जाता था। इसे हिन्दू संस्कृति का गढ़ कहते थे। राममोहन राय एक रूढ़िवादी ब्राह्मण-परिवार में पैदा हुए। इनके पूर्वज मुर्शिदाबाद के मुसलमान शासकों की नौकरी में रह चुके थे। राममोहन के पिता रमाकान्त राय एक रूढ़िवादी ब्राह्मण थे। शास्त्रों पर उनका अटूट विश्वास था। राममोहन की माँ फूलठकुरानी बुद्धिमती और दृढ़ संकल्प वाली महिला थी।

फूलठकुरानी के तीन बच्चे हुए, दो पुत्र—राममोहन और जगमोहन—और एक पुत्री। राममोहन की शिक्षा का प्रारम्भ गाँव के एक स्कूल से हुआ। एक मौलवी से उन्होंने फ़ारसी की शिक्षा भी पाई। गाँव के स्कूल में कुछ साल पढ़ने के बाद पिता ने राममोहन को पटना भेज दिया। उन दिनों पटना इस्लामी शिक्षा का केन्द्र था। वहीं पर राममोहन ने अरबी और फ़ारसी का अध्ययन किया। कुरान और इस्लामी धर्म-शास्त्र से परिचित हुए। अरबी अनुवाद के ज़रिये यूक्लिद और अरस्तू के बारे में उनकी जानकारी हुई। कुरान के गणतांत्रिक उपदेशों से वह बहुत प्रभावित हुए। अरबी चिन्तन में तर्कों का विकास उन्हें पसन्द आया। कुछ वाद-विवादों की विवेकशीलता उन्हें अच्छी लगी। खास तौर पर मुताज़िलों[1] और सूफ़ियों के दर्शन ने उन पर असर डाला।

पटना से लौटने के बाद राममोहन ने हिन्दू-समाज में फैले मूर्तिपूजा और अंधविश्वासों पर निबन्ध लिखना शुरू किया। रूढ़िवादी पिता यह बर्दाश्त नहीं

---

१. मुताज़िलों के विवेकशील सम्प्रदाय की स्थापना आठवीं शताब्दी में वाज़िल बी० आटा और अम्र बी० उबेद ने बसरा में की थी।

कर पाए। उन्होंने राममोहन को घर से निकल जाने का हुक्म दिया। राममोहन घर छोड़कर निकल गए और इधर-उधर भटकने लगे। इसी दौरान उन्होंने तिब्बत की यात्रा की। वहाँ भी वे बौद्ध धर्म में समाहित की गई मूर्ति-पूजा का खण्डन करके तिब्बती लामाओं के दुश्मन बने।

उम्र के इसी दौर के बारे में उन्होंने अपने 'ऑटोबॉयोग्राफ़िकल स्केच' में लिखा है, "जब मैं सोलह वर्ष का था। हिन्दू-समाज में प्रचलित मूर्तिपूजा के औचित्य की ओर इशारा करते हुए मैंने एक पाण्डुलिपि तैयार की। इस पाण्डुलिपि और इस विषय की मेरी निजी भावनाओं ने मेरे और मेरे निकट सम्बन्धियों के बीच एक दरार पैदा कर दी। मेरी यात्रा बरक़रार रही। कुछ दूसरे देशों में भी गया। लेकिन ज्यादातर भारत की सीमा में ही घूमा।"

कुछ वर्ष भटकने रहने के बाद राममोहन वाराणसी गए। कई साल वहाँ रहकर उन्होंने हिन्दू-दर्शन का अध्ययन किया। सन् १८०३ में राममोहन के पिता का देहान्त हो गया। इसके थोड़े ही दिन बाद राममोहन मुर्शिदाबाद चले गए।

मुर्शिदाबाद में ही उन्होंने 'तुहफ़ात-उल-मुवाहिदीन' (एकेश्वरवादियों को एक उपहार) नामक निबन्ध लिखा। यह निबन्ध फ़ारसी में लिखा गया। इसकी भूमिका अरबी में थी।

भूमिका में राममोहन ने मानव-मात्र में विचार की आम एकता की ओर संकेत किया जहाँ अस्तित्व सिर्फ़ एक होता है। भेद वहीं से शुरू होता है जहाँ उस एक अस्तित्व को अलग-अलग विशेषताओं के साथ स्वीकार किया जाता है। सम्प्रदायवादियों का खण्डन करते हुए उन्होंने लिखा, "दुनिया की अत्यधिक पिछड़ी हुई जगहें भी मैं घूम आया, मैदानों और पहाड़ों पर भी गया। मैंने सब जगह यही पाया कि लोग ईश्वर के एक अस्तित्व पर विश्वास करते हैं। वही एक अस्तित्व सृजन करता है और पालन भी। उस एक अस्तित्व को किसी खास ढंग से स्वीकार करने में उनका विश्वास नहीं है। धार्मिक सिद्धान्तों के नाम पर 'हराम' (ग़ैर कानूनी) और 'हलाल' (कानूनी) के धर्मानुदेश उनके लिए कोई मायने नहीं रखते। और इस पूर्वपीठिका के बाद मैं इस नतीजे पर पहुचा हूँ कि उस एक अस्तित्व को स्वीकार करने की प्रवृत्ति प्राकृतिक रूप से सम्पूर्ण मानव-मात्र में पाई जाती है। किसी एक या अधिक देवता के प्रति मानवता के प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय का झुकाव, उसे स्वीकार करने का एक विशेष तरीका, पूजा या भक्ति का कोई विशेष रूप, आदत या शिक्षा द्वारा आदमी पर ऊपर से थोप दिया ज़ाता है।"

इस निबन्ध में राममोहन ने धर्मों और धार्मिक अनुभव के प्रश्न पर विवेक-

पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया। उन्होंने लिखा, "वह देश सुखी है जहाँ लोग आदतों और सहज मेल-मिलापों के परिणामों का अन्तर समझते हैं।" व्यक्ति और जाति के प्रकृति-प्रदत्त गुणों से परिचित होते हैं। वे अपनी शक्ति-भर भिन्न-भिन्न लोगों के विलग धार्मिक आदर्शों के बीच बिना पक्षपात के सत्य और झूठ की परख करते हैं। प्रस्तोता की व्यक्तिगत स्थिति से प्रभावित हुए बग़ैर उनके संकल्पों की जाँच-पड़ताल करते हैं। जिन पर अधिकांश लोग आँख मूँदकर विश्वास कर लेते हैं।"

उन्होंने धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन पर ज़ोर दिया, एकेश्वरवाद की उपलब्धियों की ओर दुनिया का ध्यान आकर्षित किया। मानव मात्र में एक पैदाइशी सूझ-बूझ होती है। उन्होंने लिखा, "आदमी का दिमाग़ अगर स्वस्थ है तो किसी भी धर्म के सिद्धान्त को समझने से पहले या उसके बाद, कुछ सवाल उसके मन में उभरते हैं। वे सवाल प्रमुख हैं या गौण देश-देश पर निर्भर करता है। उस व्यक्ति में कोई पक्षपात नहीं होता, वह न्यायपूर्ण दृष्टि से देखता है। विचार करता है, उस व्यक्ति से यह उम्मीद की जाती है कि झूठ में से सचाई की परख वह कर लेगा। भ्रम में से साध्य को ढूंढ निकालेगा। धर्म के नियन्त्रण एक-दूसरे के खिलाफ वैमनस्य बढ़ाते हैं। शारीरिक और मानसिक परेशानियां पैदा करते हैं। वह व्यक्ति उन लोगों से प्रभावित नहीं होता। उसका ध्यान एक अस्तित्व की ओर रहता है। एक अस्तित्व, ब्रह्माण्ड का सन्तुलन बनाए हुए है। और वही व्यक्ति समाज का हित कर सकता है।"

आँख मूंदकर विश्वास कर लेने की प्रवृत्ति, कार्य-कारण के जाँच-पड़ताल की अयोग्यता अन्धविश्वास और अज्ञान के कारण हैं। जैसा कि उन्होंने लिखा, "वे कार्य-कारण पर विचार करने की अयोग्यता, आदत और रिवाजवश सोचते हैं, किसी नदी में नहाने, किसी पेड़ की पूजा करने या साधु होकर बड़े-बड़े धर्माचार्यों से अपने पापों के लिए क्षमा खरीदी जा सकती है, मुक्ति मिल सकती है, जीवन के सारे पाप धुल सकते हैं। विविध धर्मों की विशेषताओं के अनुसार विविध बातें सोची जाती हैं। वे सोचते हैं यह शुद्धि उनके विश्वासों का आधार और उनके धर्माचार्यों का चमत्कार है। उनके विश्वासों या उनकी सनक का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। यही कारण है कि जो इनके विश्वासों को नहीं मानते उन पर उनका कोई असर नहीं पड़ता। अगर इनकी काल्पनिक बातों का कोई असर होता तो सभी देशों पर इनका प्रभाव समान रूप से पड़ता। किसी एक खास देश के विश्वासों और आदतों तक सीमित न रहता। यह ठीक है कि असर व्यक्ति-व्यक्ति पर अपनी क्षमता और शक्ति के अनुसार अलग-अलग पड़ता है। किसी विश्वासकर्त्ता के

विश्वास पर निर्भर नहीं करता। ज़हर को मिठाई मानकर खाने से उसका असर नहीं बदल जाता। यह असर खाने वाले को मार देता है।''

राममोहन ने अलौकिक शक्ति और चमत्कार के सिद्धान्त को नकार दिया। उन्होंने लिखा, ''आम तौर पर साधारण आदमी एक सनक में काम करता है। अपनी ग्रहण शक्ति से परे जब वह कुछ देखता, सुनता या पाता है। जब उसका कोई कारण उसकी समझ में नहीं आता तब वह अलौकिक शक्ति या चमत्कार की बात करता है। दुनिया में सब-कुछ कार्य-कारण के क्रमिक सम्बन्धों से बँधा हुआ है। सारा रहस्य यही है, हर चीज एक कारण और स्थिति पर अधारित है। अगर हम अदना-सी एक चीज़ को भी लें तो पायेंगे कि प्रकृति की हर चीज़ पूरे ब्रह्माण्ड से जुड़ी हुई है। लेकिन अनुभव की तलाश और सनक की धुन में कारण छिप जाता है। दूसरा आदमी इस अवसर का फ़ायदा उठाकर अपनी अलौकिक शक्ति दूसरों पर आरोपित करता है। लोग उसकी बातों में आ जाते हैं और वह लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सफल होता है।''

आलौकिक शक्ति के भ्रामक विश्वासों के खिलाफ़ राममोहन ने आवाज़ उठाई। इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने अनुमानात्मक तर्क सामने रखे। उन्होंने लिखा, ''अनुमानात्मक तर्क समझदार लोगों के लिए रक्षा-कवच हो सकता है। इस सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि कभी-कभी कुछ अद्‌भुत चीजों का कारण ढूंढने में हमारा 'अनुमानात्मक तर्क' असमर्थ रह जाता है। कुछ लोग उस कारण को समझ नहीं पाते, ऐसी स्थितियों में हमें अपनी अन्तर्दृष्टि का सहारा लेना चाहिए कि क्या हमारा 'अनुमानात्मक तर्क' उन कारणों को समझने में अपनी अयोग्यता मान सकता है या उन कारणों का नाता किसी ऐसी असम्भव शक्ति से है जो प्रकृति के सिद्धान्तों की परवाह नहीं करती।''

उन्होंने इस असंगति की ओर संकेत किया। व्यावहारिक बातों में लोग एक-दूसरे का पारस्परिक का संबंध न समझते हुए एक को कार्य और दूसरे को कारण मानने से इन्कार कर देते हैं। लेकिन जब बात धर्म और आस्था की आती है तब एक को कार्य दूसरे को कारण मानने में ज़रा भी नहीं झिझकते। वे यह नहीं समझते कि दोनों में कोई सम्बन्ध या क्रम नहीं है। उदाहरणस्वरूप, किसी मार से बचने के लिए दुआ या प्रार्थना का सहारा लेने में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं होता या गण्डे-ताबीज द्वारा बीमारी से बचने का प्रयत्न वे बे-झिझक करते हैं।

राममोहन ने चमत्कार के पक्ष में दिये गए तर्कों को पूरी तरह नकार दिया। उनके अनुसार नियमों के उल्लंघन की शक्ति ईश्वर के पास भी नहीं है, ''यह एक माना हुआ सत्य है'' उन्होंने कहा कि ''असम्भव चीज़ों के सृजन की शक्ति सर्जक

में नहीं हैं।" उनके अनुसार खुदा की खुदाई में साझेदारी, ईश्वर की अस्तित्व-हीनता, दो विरोधात्मक वातों का अस्तित्व या इसी तरह की और बातें असम्भव चीज़ों की श्रेणी में आती हैं। उन्होंने इस आत्म विश्वास को भी चुनौती दी कि देवदूतों के माध्यम से ईश्वर हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। इस बात की पुष्टि के लिए उन्होंने विवेकपूर्ण तर्क सामने रखे। उन्होंने कहा, "प्रकृति की दूसरी चीज़ों की तरह देवदूतों का अवतार और इल्हाम भी बाहरी कारणों पर निर्भर करता है। ईश्वर से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। आविष्कार एक इस तरह के आविष्कार का आधार होता है।"

राममोहन के मूल धार्मिक विचारों को सामने रखने के उद्देश्य से उन्नीसवीं सदी के प्रथम वर्षों में मैंने तुहफ़ात-उल-मुवाहिदीन के मूल तत्त्वों का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। उस समय तक उन्होंने एकेश्वरवाद पर आधारित एक विश्वव्यापी धर्म की धारणा बना ली थी।

इसी समय के आस-पास राममोहन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजस्व-विभाग में नौकरी कर ली थी। भागलपुर, रामगढ़ और दूसरे स्थानों पर काम करने के बाद १८०६ में वह उत्तर बंगाल स्थित रंगपुर में राजस्व अधिकारी श्री जॉन डिग्बी के सहायक नियुक्त हुए। १८०६ से १८१४ तक वह रंगपुर में रहे। अपना खाली समय उन्होंने अध्ययन और तर्क-वितर्क में बिताया। इसी दौरान एक तांत्रिक विद्वान् हरिहरानन्द तीर्थ स्वामी से उनका सम्पर्क हुआ। उनकी सहायता से राममोहन ने तांत्रिक साहित्य का गहरा अध्ययन किया। रंगपुर उस समय एक कॉस्मोपॉलिटन केन्द्र माना जाता था। जैनी और मुसलमान व्यापार के लिए आते रहते थे। राममोहन का सम्पर्क जैनियों से भी हुआ। कल्पसूत्र और दूसरे जैनी धार्मिक ग्रन्थों का गहरा अध्ययन उन्होंने किया।

रंगपुर में रहते हुए राममोहन ने योरोप और इंग्लैंड की राजनीतिक घटनाओं में सजग रूप से रुचि ली। डिग्बी इंग्लैण्ड से जितने भी अखबार या पत्र-पत्रिकाएँ मँगाते थे, राममोहन उन्हें पढ़ा करते थे। बाईस वर्ष की आयु से इन्होंने अंग्रेज़ी सीखनी शुरू की थी। इन पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने से उनका अंग्रेज़ी का ज्ञान बढ़ा। योरोपीय राजनीतिक विचार-धारा से भी वह परिचित हुए। डिग्बी से हमें मालूम हुआ कि तत्कालीन योरोपीय उदारतावाद ने राममोहन को आकर्षित किया था।

कलकत्ता मिशन

सन् १८१४ में डिग्बी ने भारत छोड़ दिया तो राममोहन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की लम्बी नौकरी को त्याग-पत्र दे दिया। वह कलकत्ता में रहने लगे। अब तक वह अपनी ज़िन्दगी का मिशन आरम्भ करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार हो चुके थे। रूढ़ियों, धार्मिक संस्कारों, अन्धविश्वासों और रीति-रिवाजों में जकड़े हुए भारत के गहरे आत्मबोध को नया जीवन देना, उसे नए युग और दुनिया की तत्कालीन विचारधाराओं के क़रीब लाना उनका मिशन था।

राममोहन ने जो कार्य-पद्धति अपनाई वह उन्हींका प्रतीक थी। उन्होंने शास्त्रों के महत्त्व से एकदम इन्कार नहीं किया, बल्कि उसके साथ-साथ आदमी के महत्त्व-बोध, उसकी सूझ-बूझ और विवेक पर भी जोर दिया। सत्य तक पहुँचने के लिए उन्होंने मीमांसा-पद्धति अपनाई। मीमांसा-पद्धति, अर्थात् शास्त्रों में कही गई किसी एक बात को लेना, उसके महत्त्व को आँख बन्द करके न मानना, उसकी प्रामाणिकता को तर्क की कसौटी पर रखना, उस पर नये सिरे से विवेचन करना और तब किसी नतीजे पर पहुँचना।

सन् १८१५ में प्रकाशित वेदान्त के बंगला अनुवाद की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा,"शास्त्रों और तर्क द्वारा निर्धारित रास्ते पर हमें चलना चाहिए। ताकि इस दुनिया और इसके बाद की दुनिया में भी हम सन्तुष्ट रह सकें।" केनोपनिषद् के अंग्रेजी रूपान्तर की प्रस्तावना में वह कहते हैं, "सत्य की स्थापना के लिए शास्त्र, तर्क और ईश्वर की दया तीनों ही आवश्यक हैं। सम्भवत: शास्त्रों और तर्कों के आगे घुटने टेक देना भी ठीक नहीं होगा। तर्कों को हमारी नैतिकता के विवेक और ज्ञान का प्रकाश चाहिए। इसके बाद हम सर्वशक्तिमान ईश्वर की दया पर निर्भर कर सकते हैं।"

शास्त्रों से सम्बन्धित अपने विभिन्न निबन्धों में राममोहन ने अक्सर वशिष्ठ की निम्न पंक्तियों का हवाला दिया है :

"अगर एक बच्चा कोई तर्कपूर्ण बात कहता है तो उसे मान लेना चाहिए, लेकिन अगर स्वयं ब्रह्मा भी कोई तर्कहीन बात कहे तो नहीं माननी चाहिए।"

उपनिषद् कहता है, असीम के बोध के साधन हैं ज्ञानेन्द्रियाँ, मस्तिष्क और बुद्धि। उपनिषद् ने कहीं नहीं कहा कि ब्रह्मतत्त्व—ईश्वर का ज्ञान अलौकिक है। इसलिए बोध की पहुँच से परे है। शास्त्रों का सहारा लिये बग़ैर इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। वेदान्त ने भी असीम के प्रतिबोध को ब्रह्माण्ड का मूल कारण माना है। जन्म, जीवन और संहार इसके प्रमाण हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मस्तिष्क, बुद्धि और तर्क के सहारे ब्रह्म की अनुभूति होती है। राममोहन ने सत्य तक पहुँचने और उसके सूक्ष्म दर्शन के लिए उसी हेतुवाद का सहारा लिया। लेकिन शास्त्र की प्रभुता को उन्होंने कभी नकारा नहीं। इतना ज़ोर ज़रूर दिया कि स्वीकार करने से पहले शास्त्रों के उपदेशों की जाँच-परख होनी चाहिए।

सन् १८१५ में राममोहन ने आत्मीय सभा की स्थापना की। इसी सभा के अन्तर्गत उन्होंने कुलीनवाद, लड़की बेचने की प्रथा और जाति-भेद के विरुद्ध आन्दोलन किये। पिता और पति की सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार की बात उठाई। सन् १८१९ में यह आत्मीय सभा बन्द हो गई। पुराने विचारों के एक उपनिवेशवादी अंग्रेज जॉन बुल और हिन्दू रूढ़ियों की पक्षधर 'समाचार चन्द्रिका' ने इस उदारतावाद का विरोध किया। दोनों मिलकर राममोहन के ख़िलाफ़ खड़े हुए। रूढ़िवादी हिन्दुओं की धर्म सभा ने भी राममोहन का कड़ा विरोध किया।

राममोहन ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "मैंने हिन्दू धर्म पर प्रहार नहीं किया है। मेरा प्रहार उसके अन्धविश्वासों और उसकी कट्टरता पर है।" फिर भी हठधर्मी हिन्दू उनके ख़ून के प्यासे हो गए। जब वह सती-प्रथा को मिटाने का अथक प्रयास कर रहे थे, धर्म-सभा बुरी तरह उनका विरोध कर रही थी। इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्राच्य भाषाविज्ञ होरेस हाइमन विल्सन ने सती-प्रथा-उन्मूलन को हिन्दू धर्म में हस्तक्षेप माना। राममोहन ने इस बात की असत्यता सिद्ध कर दी। रूढ़िवादी हिन्दुओं ने विधवा स्त्री को जीवित जला देने की अपील की। धर्म-सभा ने कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट के वकील फ्रांसिस माथी को अपना वकील नियुक्त किया। कलकत्ता में अपने भाषण के दौरान माथी ने कहा, "आपका प्रतिनिधि बनकर मैं इंग्लैंण्ड जा रहा हूँ। आपकी अपील के पक्ष में अपनी ओर से कोई भी कसर उठा नहीं रखूंगा, मैं तन-मन से इस बात का प्रयत्न करूँगा कि आप की अपील की जरा भी उपेक्षा न होने पाए।" लेकिन इस योग्य अंग्रेज़ के सारे प्रयत्नों के बावजूद सती-प्रथा का उन्मूलन हो गया।

सन् १८१५ में राममोहन ने वेदान्त सूत्र का बंगला अनुवाद किया। सन् १८१६ में उन्होंने 'वेदान्त सार' का बंगला और वेदान्त का अंग्रेजी अनुवाद

किया। इसी साल उन्होंने ईश और केन उपनिषदों का बंगला और अंग्रेजी अनुवाद किया। सन् १८१७ में उन्होंने कठ और माण्डूक्य उपनिषदों का बंगला अनुवाद किया। वेदान्त और उपनिषद् के बंगला और अंग्रेजी में अनुवाद किये जाने का यह पहला अवसर था। सन् १८२३ में उन्होंने एक विवरणिका लिखी, 'हिन्दू स्त्रियों का अधिकारापहरण'; इसमें उन्होंने माँग की कि हिन्दू स्त्रियों को उनके पिता और पति की सम्पत्ति में से हिस्सा मिलना चाहिए। सन् १८२७ में उन्होंने संस्कृत 'मृत्युञ्जय' की 'वज्रशुचि' का सम्पादन और प्रकाशन किया। इसके निबन्ध जाति-भेद से सम्बन्धित हैं।

ईसाई पादरियों से विवाद

सन् १८२१ में कलकत्ता 'यूनिटेरीयन एसोसिएशन' की बुनियाद पड़ी। राममोहन इस सभा का पथ-प्रदर्शन कर रहे थे। सभा को इनका आर्थिक सहयोग प्राप्त था। देश की जनता की बहुमुखी प्रगति इस सभा का उद्देश्य था। इस सभा के उद्देश्यों और प्रयोजनों का निर्धारण राममोहन ने स्वयं किया था। जनसाधारण की उन्नति के लिए जो सुझाव उन्होंने दिये वे प्रसशंनीय रूप से आधुनिक थे। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि राममोहन ने घोर आध्यात्मिक होते हुए भी जीवन के आर्थिक और यथार्थवादी पक्ष की उपेक्षा नहीं की है, जैसा कि आध्यात्मिकता में विश्वास करने वाले अक्सर करते हैं। व्यक्तिगत जीवन के विभिन्न पक्षों की अटूट एकता को उन्होंने गहराई से समझा था। इस सत्य को उन्होंने मान लिया था कि मानव की मुक्ति टुकड़ों में नहीं एक सम्पूर्ण रूप में हो सकती है।

सभा के उद्देश्य और प्रयोजनों का ज़िक्र करते हुए राममोहन ने लिखा, "और इसलिए जो क़दम, शिक्षा के लाभों को बढ़ावा देने के लिए, अज्ञान-अन्धविश्वास, कट्टरता और धर्मान्धता दूर करने के लिए, ज्ञान का स्तर उठाने के लिए, नैतिकता के सिद्धान्तों के शुद्धीकरण, व्यापक सहिष्णुता और उदारता को बढ़ावा देने के लिए उठाए जायेंगे, सभा के उद्देश्यों की सीमा में होंगे। जनसाधारण की परिस्थितियों में सुधार, उपयोगी कलाओं और श्रमशील आदतों को बढ़ावा देकर जनसाधारण की सामाजिक और पारिवारिक परिस्थिति में सुधार इस सभा का प्रयोजन है। अनुभव से यह सिद्ध हाता है कि जब मूल प्राकृतिक और सामाजिक आवश्यकता में ठीक से पूरी होती है, तभी बुद्धि नैतिकता और धर्म के उच्च-स्तरीय विकास की आशा की जा सकती है।"

इस समय बंगाल स्थित सीरामपुर ईसाई-धर्म-प्रचारकों का बहुत बड़ा केन्द्र था। इन धर्मोपदेशकों के प्रारम्भिक यत्नों में बड़े ज्ञानी और दयाशील लोग आये। उनमें से कुछ का—विशेष रूप से 'रेवरेण्ड' विलयन कैरी का बंगाल बड़ा कृतज्ञ है। लेकिन चूंकि ये धर्म-उपदेशक या धर्म-प्रचारक धर्म-परिवर्तन का काम

कर रहे थे इसलिए वे स्वयं को साम्प्रदायिकता का शिकार होने से बचा नहीं सकते थे। हिन्दू-धर्म-विरोधी प्रचार में अक्सर उनका पूर्वाग्रह ज़ाहिर होता था। यह पूर्वाग्रह अज्ञान की सीमा तक था। राममोहन ने दो परचे निकाले एक बंगला में 'ब्राह्मण सेबाधि' और दूसरा अंग्रेज़ी में 'ब्राह्मनिकल मैगज़ीन'। इन परचों के माध्यम से उन्होंने सीरामपुर के ईसाई-धर्म-प्रचारकों का विरोध करके हिन्दू अद्वैतवाद और वेदान्त का प्रचार किया।

राममोहन ने ईसाइयों के त्रियेक परमेश्वरवाद (ट्रिनिटेरीयनिज्म) की कड़ी अलोचना की, त्रियेक परमेश्वरवाद को लेकर एक ओर राममोहन और उनके मित्र रेवरेण्ड ऐडम और दूसरी ओर रेवरेण्ड डॉक्टर राईलैण्ड लेफ्टिनेण्ट ह्वाइट आदि के बीच बड़ा वाद-विवाद हुआ, एक ईसाई-धर्म-प्रचारक द्वारा त्रियेक परमेश्वरवाद के पक्ष में दिए गये गणित पर आधारित तर्कों को राममोहन ने, 'एशियाटिक जर्नल' में छपे एक लेख द्वारा रद्द कर दिया। उन्होंने लिखा, "त्रियेक परमेश्वर के पक्ष में कुछ दिनों पहले मैंने गणित द्वारा सिद्ध किये गए। तर्कों पर आधारित एक धार्मिक लेख पढ़ा, यह इस प्रकार है, 'जैसे तीन रेखाओं से एक त्रिभुज बनता है उसी प्रकार तीन इकाइयों से एक ईश्वर की स्थापना होती है।" आश्चर्य है कि सर आइज़द न्यूटन जैसे महान् गणितज्ञ का दिमाग त्रियेक परमेश्वर के पक्ष में यह तर्क न ढूँढ पाया जिसे त्रियेक परमेश्वरवादी प्रकाश में लाए। न्यूटन के लिए यह सहज था। त्रिभुज और ईश्वर के बीच की यह समरूपता, भगवान् और एक रेखा के अस्तित्व को नहीं मानती। किसी भी अवस्था या सापेक्ष वस्तु-स्थिति के कल्पित विस्तार का अस्तित्व केवल विचार में सम्भव है। यह एक बात है। 'दूसरी, पिता-पुत्रपवित्र आत्मा (होली गोस्ट) के एकत्व के प्रयास को यह असफल बना देती है, क्योंकि त्रिभुज की तीनों भुजाएँ अपना अलग-अलग अस्तित्व रखती हैं।

"तीसरी, यह तीनो इकाइयों—पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा—ये अलग-अलग ईश्वर होने से इन्कार करती हैं, क्योंकि अलग-अलग त्रिभुज की प्रत्येक भुजा त्रिभुज नहीं बना सकती।

"चौथी, यह हिन्दुओं के उस वर्ग को जिसे चतुर्बुदात्मक कहते हैं इसी तर्क द्वारा अपनी बात साबित करने का अवसर दे देगी। चतुर्बुदात्मक अर्थात् ईश्वर के अस्तित्व के चार भागों में विश्वास करने वाला। ईश्वर की एक चतुर्भुज से तुलना करते हुए वे उसकी चारों भुजाओं को ईश्वर के चार अस्तित्वों में साबित कर देंगे।

पाँचवीं, बहुदेववाद अर्थात् ईश्वर के अनेक रूपों में विश्वास करने वाले

हिन्दुओं को यह तर्क ज्यादा माफ़िक आ सकता है।''

सन् १८२० से १८२३ तक राममोहन का तर्क-वितर्क ईसाई-धर्म-प्रचारकों के साथ चलता रहा। सन् १८२० में इनकी—'द प्रीसेप्ट ऑफ़ जीजस,' द गाइड टू पीस एण्ड हैपिनेस' पुस्तिका प्रकाशित हुई। इस पुस्तिका की प्रस्तावना में राममोहन ने न्यू टेस्टामेण्ट के सैद्धान्तिक भागों—रूढ़ि, रहस्य, चमत्कार के विरोध में अपना विचार प्रकट किया। रेवरेण्ड द्योकार शिमतराममोहन ने को क़ाफ़िर और सत्य का संहारक कहते हुए उनकी भर्त्सना की। राममोहन ने 'प्रीसेप्ट ऑफ़ जीजस' के बचाव में, 'एन अपील टू क्रिश्चियन पब्लिक' द्वारा रेवरेण्ड द्योकार शिमत के आरोपों का उत्तर दिया। डॉ० जोथुआ मार्शमौन ने इसके विरुद्ध 'द फ्रेण्ड ऑफ़ इण्डिया,' में लिखा। राममोहन ने 'सेकेण्ड अपील टू द क्रिश्चियन पब्लिक' द्वारा इसका जवाब दिया। यह १८२१ में छपी थी। डॉक्टर मार्शमैन ने फिर इस विषय पर 'द फ्रैंड ऑफ़ इण्डिया' में लिखा। राममोहन की 'फाइनल अपील टू द क्रिश्चियन पब्लिक' जनवरी १८२३ में छपी। 'द प्रीसेप्ट ऑफ़ जीजस' की प्रस्तावना में राममोहन ने लिखा था ''मैं यह कहने के लिए बाध्य हूँ कि न्यू टेस्टामेंट में पाये जाने वाले नैतिक सिद्धान्तों को अगर उसमें लिखी दूसरी बातों से अलग कर लिया जाय तो यह विभिन्न आस्था और बुद्धिस्तर के लोगों के दिलोदिमाग़ के विकास में बहुत सहायक होगा। क्योंकि इसके ऐतिहासिक और कुछ दूसरे भाग स्वतंत्र और ईसाई विरोधी विचार रखने वालों के सन्देह और वादविवाद का कारण बन सकते हैं। विशेष रूप से चमत्कारिक बातें उन पर बहुत कम असर डालेंगी। क्योंकि एशिया निवासियों को जो धार्मिक कथाएँ विरासत में मिली हैं। वे उनसे कहीं ज्यादा चमत्कारपूर्ण है। इसके विपरीत नैतिक सिद्धान्त, जिनका उद्देश्य पूरी मानव जाति में एकता और शांति बनाये रखना है, पारलौकिकता के विचार से सुरक्षित हैं तथा ज्ञानी-अज्ञानी दोनों की समझ में समान रूप से आते हैं। धर्म और नैतिकता की यह सरल नियमावली आदमी के आदर्शों को ईश्वर के ऊँचे और उदार विश्वासों के स्तर तक उठाने के लिए इतनी सुन्दरता से बनाई गई है और आदमी के व्यक्तिगत तथा सामाजिक कर्तव्यों के पालन में उसके व्यवहार का इतना उचित नियंत्रण करती है कि मैं इसके, इस रूप में लागू होने पर अच्छे-से-अच्छे परिणाम की आशा कर सकता हूँ।

सीरामपुर के मिशनरी प्रेस ने हिन्दू अद्वैतवाद और वेदान्त पर अपने प्रहार जारी रखे। राममोहन नवम्बर १८२३ की, 'ब्रह्मनिकल मैगजीन' के अंक चार मेंलिखने पर विवश हो गए।

इस अंक कि भूमिका में उन्होंने लिखा, "बावजूद इसके कि मैंने इस पत्रिका के तीनों अंकों में, धार्मिक वाद-विवाद में अपमानजनक भाषा का प्रयोग न करके विनम्र निवेदन किया था। फिर भी आश्चर्य और दुःख के साथ मैं यह देखता हूँ कि एक मिशनरी प्रेस द्वारा जारी किये गए, और मिशनरी सज्जनों द्वारा वितरित किये गए ट्रैक्टतें में वेदों के सिद्धान्तों पर नास्तिकता के सीधे आरोप लगाये गए हैं और उनके अनुगामियों की हैसियत से हमारी गलत निन्दा की गई है। इसने मुझे दो साल बाद 'ब्राह्मनिकल मैगज़ीन' का चौथा अंक छापने पर विवश कर दिया है।

"हिन्दू धर्म की विश्वव्यापी उदारता, सहिष्णुता और विनम्रता को निभाते हुए मैं किसी भी धर्म का विरोध नहीं कर सकता। ईसाई धर्म का विरोध तो दूर की बात है। इस धर्म के अनुयायियों के प्रति मेरा आदर मुझे इस धर्म की कमियों को बेनकाब न करने देता, अगर ईसाई-लेखकों द्वारा हिन्दूधर्म पर लगातार कीचड़ उछालने की प्रवृति ने हमें मजबूर न किया होता। मुझे अब भी दोनों धर्मों की तुलनात्मक विशेषताओं की बारीकी से जाँच करने में बहुत खुशी होगी। बशर्ते ईसाई लेखक इस विवाद को विनम्र और आदरपूर्ण भाषा में जारी रखें, जैसा कि साहित्यिक लोगों और सत्य के अन्वेषियों को शोभा देता है।"

त्रियेक परमेश्वरवाद पर राममोहन के दृष्टिकोण का तर्कपूर्ण उत्तर देने में असमर्थ होने पर डॉक्टर मार्शमैन ने हिन्दू धर्म की बेजा आलोचना की। उन्होंने कहा कि हिन्दूवाद का मूल 'फ़ादर ऑफ़ लाइज़' है। राममोहन ने उत्तर में कहा, "हमको याद रखना चाहिए कि हम गम्भीर धार्मिक वाद-विवाद में उलझे हैं। एक-दूसरे को भला-बुरा कहने में नहीं।" राममोहन और ईसाई-धर्म-प्रचारकों के वाद-विवाद को लेकर 'इण्डिया गजट' के सम्पादक ने राममोहन की ओर संकेत करते हुए लिखा—"इसमें उनके दिमाग़ की तीक्ष्णता, उनकी बुद्धि की तर्कशीलता और उनका अद्वितीय स्वभाव प्रकट होता है। जिससे वह शालीनता के साथ तर्क-वितर्क कर सकते हैं।

राममोहन ने धार्मिक विवादों में सदा यही उच्चादर्श बनाये रखा। लगातार शान्त और विनम्र रहे। अपने विरोधियों के साथ उदार मस्तिष्क और खुले हुए मन से पेश आए विवाद के दौरान कभी मानसिक सन्तुलन नहीं खोया। विरोधियों का भला-बुरा भी वह सहज रूप से सहते रहे। जब कि ईसाई-धर्म-प्रचारक और कट्टरतावादी हिन्दू, जिनके साथ वर्षों से इनका वाद-विवाद चल रहा था, लगातार इन्हें भला-बुरा कहते रहे। उन्होंने जो कुछ कहा या लिखा उससे उनका विवेक, विश्वव्यापक दृष्टिकोण और उदारता प्रकट होती है।

राममोहन का एक और गुण था उनकी अखंड साधुता। एक बार ईसाई-धर्म-प्रचारकों के साथ एक वाद-विवाद में कहा गया, मूल बाईबिल का अध्ययन किये बग़ैर ईसाई धर्म पर बहस करने का उन्हें क्या हक़ है। राममोहन ने यह तर्क मान लिया। दो वर्ष तक वाद-विवाद से नितान्त अलग रहे। इस बीच उन्होंने लैटिन, ग्रीक और हिब्रू भाषाओं का अध्यन किया। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा, "इसने मुझे दो वर्ष के बाद, 'ब्राह्मनिकल मैगज़ीन' का चौथा अंक छापने पर विवश कर दिया। राममोहन द्वारा आरम्भ किये गए नवजागरण की देन श्री राखालदास हालदार ने १६ जुलाई १८५२ के 'इण्डियन डायरी' में लिखा, "आज मेरी बात-चीत एक यहूदी से हुई। उसने बताया कि राममोहन राय ने उसके मामा से हिब्रू भाषा सीखनी शुरू की है ताकि वह मूल बाईबिल का अध्ययन कर सकें। १५ नवम्बर १८२३ के 'ब्राह्मनिकल मैगज़ीन' के अंक चार में राममोहन ने अपना एक लेख शामिल किया। वह लेख उन्होंने शिवप्रसाद शर्मा नाम से लिखा था। इस लेख का शीर्षक था, 'एक हिन्दू के लिए ईसाई धर्म को नकारने के कारण' इस लेख में उन्होंने त्रियेक परमेश्वर और जन-कल्याण के लिए ईसा मसीह के प्रायश्चित्त (अटूनमेन्ट ऑफ़ क्राइस्ट) पर बहस थी। ये दोनों ही बातें ईसाई धर्म की अटूट अंग हैं। अपनी सहज तर्क-विलक्षणता, विवेक और स्पष्टवादिता के साथ उन्होंने इन दोनों सिद्धान्तों की कमज़ोरी सिद्ध कर दी।

ईसाई-धर्म-प्रचारकों के हमलों से वेदान्त की शिक्षाओं की रक्षा करते हुए तथा त्रियेक परमेश्वरवाद और ईसा मसीह के 'प्रायश्चित्त' को नकारते हुए राम-मोहन ने 'द प्रिसेप्टस ऑफ़ जीजस, द गायड टू पीस एण्ड हैपिनेस' की भूमिका में लिखा, "इन कारणों से मैं इन विषयों के किसी विवाद में उलझने से इन्कार करता हूँ और ईसामसीह के शब्दों को अंग्रेज़ी से बंगला और संस्कृत में अनुवाद करके अपने साथियों के सामने रखना चाहता हूँ।" ईसाई-धर्म-प्रचारकों के साथ राममोहन के विवाद की सफलता आशातीत सिद्ध हुई। एक बैप्टिस्ट ईसाई-धर्म-प्रचारक रेवरेण्ड विलियम ऐडम ने त्रियेक परमेश्वर के विरुद्ध एकेश्वरवाद के पक्ष में राममोहन के विचारों को स्वीकार कर लिया और खुले तौर पर एकेश्वर-वादी ईसाई धर्म के पक्ष में त्रियेक परमेश्वरवाद का खण्डन किया। कलकत्ता के योरोपीय समाज में हलचल मच गई। ईसाई जनता का रोष इतना बढ़ गया कि कलकत्ता के तत्कालीन विशप ने रेवरेण्ड ऐडम पर धर्मद्रोह का आरोप लगाकर भारत से वापस भेजने का फैसला कर लिया। लेकिन इंग्लैण्ड के अटर्नी जनरल से यह जानकर कि धर्म की रूढ़ियां छोड़ देने पर अब सजा नहीं मिलती, उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ।

ईसाई धर्म की रूढ़ियों को नकारकर ईसा मसीह की शिक्षाओं का प्रचार करते हुए सीरामपुर के ईसाई-धर्म-प्रचारकों द्वारा प्रकाशित एक पत्रिका, 'द फ्रेण्ड ऑफ इण्डिया' ने अपने बीसवें अंक में, 'एक ईसाई धर्म प्रचारक' का एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें राममोहन पर ईसाई धर्म की दुश्मनी का आरोप लगाया। क्रोध और घृणा से इस अनुचित प्रदर्शन का उत्तर देते हुए १८२० में राममोहन ने 'द प्रीमेण्ट ऑफ़ जीजस' के पक्ष में, 'ईसाई जनता से एक अपील' लिखी। यह पुस्तिका अकाट्य तर्क, विवेकपूर्ण न्याय और सहज शिष्टाचार का उत्कृष्ट नमूना है।

'द फ्रेण्ड ऑफ़ इण्डिया' के बीसवें अंक में राममोहन राय ने लिखा, "उस पत्रिका में 'एक ईसाई धर्म प्रचारक' के हस्ताक्षर से 'द प्रीमेण्ट ऑफ़ जीजस' और सम्पादक के सम्बद्ध विचार पढ़कर मुझे आश्चर्य और निराशा दोनों ही हुई। इससे पहले कि मैं उनकी उठाई हुई शंकाओं का समाधान करूँ मैं जनता से निवेदन करूँगा कि वे स्वयं ईसाइयत के ख़िलाफ़ जा रहे हैं। व्यक्ति को बीच में लाकर उसे क़ाफ़िर की संज्ञा दी है। यह दृष्टिकोण अभद्र और ईसाइयत के ख़िलाफ़ है। ईसाइयत के खिलाफ़ इसलिए कि काफ़िर शब्द का प्रयोग करके सम्पादक ने सत्य, भद्रता और उदारता के नियमों का उल्लंघन किया है। सत्य, भद्रता और उदारता, तीनों ही ईसाई धर्म के मुख्य तत्त्व हैं। मैं समझता हूँ समीक्षक या सम्पादक कोई भी न्यू टेस्टामेन्ट के नैतिक सिद्धान्तों को, 'ए गाइड टू पीस एण्ड हैपिनेस' कहकर छापने पर संग्रहकर्ता को क़ाफ़िर होने का ख़िताब नहीं दे सकते। उसकी लेखन शैली, 'द प्रीमेण्ट ऑफ़ जीजस' नैतिकता और धर्म की एक संहिता है। उसका विश्वास कि इस ब्रह्माण्ड का सर्जक और पालक ईश्वर है या उसका यह समझना कि उन उपदेशों से पूरी मानव जाति के कर्त्तव्यों का निर्धारण होता है, उसका अपना विश्वास है।

ईसाई-धर्म-प्रचारकों की दृष्टि में राममोहन का 'पाप' यह था कि उन्होंने ईसामसीह की नैतिक शिक्षाओं को न्यू टेस्टामेन्ट में पाई जाने वाली रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से अलग करने का प्रयास किया और यह कहा कि ईसामसीह की शिक्षाएं पूरी मानव जाति के लिए एक सन्देश है। प्रचलित ईसाई धर्म की रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास ईसामसीह की शिक्षा को ग्रहण करने में एक बड़ी रुकावट हैं। अपने इस प्रयास के लिए राममोहन को ईसाई-धर्म-प्रचारकों द्वारा सत्य विरोधी होने की उपाधि मिली।

राममोहन ने इस अपील का अन्त अविस्मरणाय शब्दों के साथ किया, 'भगवान् धर्म को आदमी और आदमी के बीच भेद भाव तथा वैमनस्य को नष्ट

करने वाला और मानव जाति की एकता और शान्ति को बढ़ावा देने वाला बनाये।'' यहाँ एक विश्वव्यापी धर्म के उद्भव के चिह्न साफ़ नजर आते हैं। 'प्रायश्चित्त' और 'त्रियेक परमेश्वरवाद' आदि का जो तर्कपूर्ण विश्लेषण राममोहन ने किया उससे उनके ईसाई धर्म के ज्ञान का पूरा पता चलता है। अपने ज्ञान की शक्ति से उन्होंने ईसाई-धर्म-प्रचारकों के वेदान्त और हिन्दू धर्म के खिलाफ संकुचित और पूर्वाग्रही प्रहारों का मुकाबला किया।

हालांकि भारत में ईसाई-धर्म-प्रचारकों ने राममोहन की बर्बरतापूर्ण भर्त्सना की। लेकिन योरोप और अमेरिका में उनके लेखों को पसन्द किया गया। वेदान्त पर उनका पहला अंग्रेज़ी प्रकाशन सन् १८१६ में सामने आया। इसने योरोप और इंगलैण्ड में पत्र-पत्रिकाओं की प्रशंसा प्राप्त की। 'द मन्थली रिपॉज़िटरी ऑफ़ थियालॉजी एण्ड जनरल लिटरेचर' ने वेदान्त पर राममोहन के प्रकाशन की विस्तारपूर्वक समीक्षा करते हुए लिखा, "एक हिन्दू पण्डित राममोहन राय ने, जोकि ब्राह्मण हैं, इस वर्ष कलकत्ता से 'एन एब्रीजमेण्ट ऑफ़ द वेदान्त' नामक एक छोटी पुस्तक प्रकाशित की है आदि···वेदों के कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण अंशों का संकलन इसमें किया गया है। प्राकृतिक धर्म के सिद्धान्तों को बड़े महत्त्व के साथ रखा गया है। पूजाविधियों, ऋतुओं और भोजन के महत्त्व को समझाया गया है। धर्म में इनका भी स्थान है। भले ही ज्ञान और ईश्वर का प्रेम पाने वाले नकार दें।''

ब्लॉक के बिशप एबेग्रेग्वायर ने फ्रांसीसी भाषा की एक पुस्तिका में राममोहन के बारे में निम्नलिखित रोचक प्रसंग लिखा, "हर छ: महीने बाद वह एक पुस्तक बंगाली और अंग्रेज़ी में छपवाते हैं। उनका अस्तिकतावाद विकसित हो रहा है···विवाद में उन्हें मज़ा आता है। दर्शन और ज्ञान की परिपक्वता के कारण किसी भी बात पर अपना आम विचार न देकर वह कार्य-कारण और तर्क द्वारा उसे सिद्ध करते हैं···उनका आग्रह है कि हिन्दुओं के शास्त्रीय दर्शन की तुलना में उन्हें योरोपीय ग्रन्थों में कुछ भी नहीं मिला।

४ जून १८२४ को लिखे गए, डॉ० टी० रीज़ के नाम राममोहन राय के एक पत्र में हमने पढ़ा, "आदरणीय, पिछले १६ जून का आपका लिखा हुआ पत्र मिला। साथ में पार्सल द्वारा भेजी हुई आपकी किताबें भी मिलीं। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। कमेटी द्वारा मेरे संग्रह 'द प्रीसेप्ट ऑफ़ जीजस' के पुन: प्रकाशन और इसके पक्ष में दो अपीलों के सम्मान पर मुझे गर्व हैं। मेरा निवेदन है कि इस समर्थन के लिए मेरा हार्दिक आभार आप सदस्यों तक पहुँचा देंगे···अपनी खुशी को व्यक्त करने की भाषा मेरे पास नहीं है। यह जानकर कि रोमी सत्ता के दौरान

धीरे-धीरे जो मूर्ति-पूजा की बेहूदी स्थापनाएँ व्यवस्था में आ गईं उनसे मूलत: विशुद्ध, सहज और यथार्थवादी ईसाई-धर्म को मुक्त करने के लिए इंगलैण्ड, अमेरिका, दोनों जगह सत्य के अन्वेषी मित्र लगे हुए हैं। वे अपने अभियान में सफल हों यही मेरी कामना है। उनका नाम अगर अधिक नहीं तो लूथर जितना रोशन हो; जिन्होंने धार्मिक नव-निर्माण का काम आरम्भ किया था, धार्मिक जगत् पर जिनका ऋण है, जिन्होंने मानवीय धर्मों और दैवी प्रभुत्व का अन्तर स्थापित किया है और आडम्बरों से उदारता को अलग किया है।''

ईसाई धर्म और वेदान्त पर राममोहन के लेख अमेरिका पहुँचे। थोरीउ और परमवादी इन लेखों से बहुत प्रभावित हुए। उस समय वहाँ 'रॉय स्कूल' प्रगति कर रहा था। सन् १८९४ के 'ओपेन कोर्ट' में मौनक्यूर डैनियल कॉनवे ने लिखा, ''राममोहन राय के कारण ही 'ब्रिटिश और विदेशी यूनिटेरीयन एसोसियेशन' की स्थापना हुई। हिन्दू-धर्म-प्रचारकों के कुछ शिष्यों ने अनेक स्थानों पर आस्तिकता आन्दोलन चलाया और मद्रास के अनुयायियों ने श्री फ़ॉक्स से सम्पर्क स्थापित किया। सितम्बर १८२० में पार्लियामेन्ट कोर्ट ने मद्रासी अद्वैतवादियों को पाँच गिनी योगदान के रूप में भेजा, और १८२४ में कलकत्ता में 'एंग्लो इण्डियन अद्वैतवादी संस्थान' की स्थापना के लिए बीस पौण्ड का योगदान भेजा गया। इन तथ्यों और राममोहन राय द्वारा अनूदित धार्मिक हिन्दू कविता ने श्री फ़ॉक्स को अद्वैतवाद से भी विशाल संगठन के प्रति जागरूक किया···वास्तव में धार्मिक विचारक की हैसियत से 'हिन्दू' का ईसाई दुनिया में कोई सानी नहीं। श्री फ़ॉक्स से ही पूर्वी दर्शन की पश्चिमी दर्शन पर प्रतिक्रिया शुरू हुई, जो दिनों-दिन बढ़ती गई···२५ मई, १८३१ को 'एसोसियेसन' ने अपनी छठी वार्षिकी 'साउथ प्लेस चैपल' में मनाई। राजा राममोहन राय वहाँ ठीक मौके से पहुँचे। समारोह में फ्रांस और ट्रांसिलवानिया के अद्वैतवादी उपस्थित थे और हार्वर्ड विश्व-विद्यालय के प्रधान डॉ० कर्कलैण्ड भी आये थे। राममोहन राय ने संक्षिप्त किन्तु पुरअसर व्याख्यान दिया। अपने आकर्षक व्यक्तित्व और पुरअसर व्याख्यान से इन्होंने सभी में चेतना भर दी।''

स्मरणीय बात यह है कि राममोहन हिन्दू धार्मिक सिद्धान्तों को अन्धकारमय करने वाली रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के कटु आलोचक थे। वह उन लोगों में नहीं थे जो ईसाई मिशनरियों की आलोचना से वेदान्त और हिन्दू धर्म को बचाने के लिए रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का सहारा लेते थे या हिन्दू धर्म के दोष भी सही साबित करने में लगे रहते थे। यह पूर्वाग्रह सत्य की खोज करने वाले व्यक्ति के लिए अशोभनीय है। लेकिन धर्मान्ध अनुयायियों में धार्मिक समस्याओं के प्रति

अधिकतर यही दृष्टिकोण होता है। राममोहन राय इस पूर्वाग्रह के विरोधी थे। अपने विशिष्ट संयम और गरिमा से उन्होंने हमेशा रूढ़ियों और अन्धविश्वासों पर प्रहार किया। जिसने धार्मिक हिन्दू दर्शन को दूषित कर रखा था। राममोहन ने संकीर्ण धर्मान्ध की तरह कभी उनका समर्थन नहीं किया।

राममोहन एक सर्वव्यापी धर्म के अन्वेषी थे। संसार के चार धर्मों—हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध, ईसाई—का तुलनात्मक अध्ययन करके उनके मूल तत्त्वों में एकता स्थापित करने वाले वह संसार के पहले व्यक्ति थे। विश्व धर्मों तक उनकी पहुँच भावनात्मक न होकर संश्लेषणात्मक थी। प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स के अनुसार धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का प्रारम्भ उन्हींने किया था। और मैक्समूलर का खयाल था कि पूर्व और पश्चिम के संयोग का प्रयत्न करने वाले राममोहन पहले व्यक्ति थे। राममोहन इस बात को अच्छी तरह समझ गए थे कि सर्वव्यापी सामंजस्य स्थापित करने के लिए धर्मों का सुधार आवश्यक था। राममोहन राय के विचारों और क्रिया-कलापों के इस पक्ष का अद्भुत प्रतिपादन करते हुए डॉ० ब्रजेन्द्रनाथ सील ने स्वीकार किया है कि "सही मायनों में वह आधुनिक भारत के जनक थे।"

इस संदर्भ में कलकत्ता के उनके मित्र और सहयोगी रेवरेण्ड विलियम ऐडम की श्रद्धांजलि का ज़िक्र जरूरी है, "वह स्वतंत्र हो न हो। स्वतंत्रता का परिवेश वह सांस लेने के लिए बना लेता है। अगर ऐसा परिवेश उसे नहीं मिला तो अपने लिए उस परिवेश की उसने सृष्टि की। एक प्राचीन अंग्रेज़ कवि की तरह उसने भी महसूस किया कि मेरा राज्य मेरा दिमाग है।" और इस स्वतंत्र राज्य से आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अत्याचार के सिद्धान्तों पर अथक रूप से वह हमले करता रहा। परिस्थितियों का तकाजा था। वह इसका एक अंग बन गया। आजादी से प्रेम शायद उसकी आत्मा का सबसे बड़ा आवेग था। आजादी सिर्फ़ शरीर की ही नहीं, दिमाग की भी। आजादी सिर्फ़ काम करने की नहीं, विचार करने की भी। किसी आन्तरिक प्रेरणावश वह अपने ही लोगों के धर्म, अपने ही देश के रीति-रिवाज, अपने ही परिवार, अपनी ही परम्परा, अपने व्यक्तिगत पद द्वारा आरोपित नियंत्रणों में रहने, पददलित होने से भाग निकला। राह में अगर अड़चनें आईं तो उन्हें निर्भय होकर उसने खत्म कर दिया। अगर उसकी मानसिक आजादी पर हमले का संकेत भी हुआ तो राममोहन ने आघात और अपमान को गहराई से महसूस किया·· व्यक्तिगत स्वतंत्रता का यह आग्रह···मानसिक स्वतंत्रता में जरा भी दखल दिये जाने के प्रति इस तरह की भावुक ईर्ष्या···के साथ ही उसमें दूसरों को समान अधिकार देने की परिपूर्णता

भी थी। उन लोगों के प्रति भी, जो धर्म और राजनीति में हमेशा उसके नितान्त विरोधी रहे। और उनसे भी ज्यादा उन लोगों के प्रति, जिन्हें प्रकृति और समाज ने पूरी तरह उसके नियंत्रण में छोड़ा···आजादी के प्रति यह प्रेम···योग्य उद्देश्य के प्रति उसकी आस्था से उत्पन्न एक विवेकपूर्ण विश्वास था। ऐसा विश्वास, जो एक स्वस्थ संचालित और स्वनियंत्रित स्वतंत्रता एक व्यक्ति और समाज को प्रदान करती है। इस स्वतंत्रता के आनन्द की सीमा को उसने किसी वर्ग, किसी रंग जाति, देश या धर्म के लिए सीमित नहीं किया। उसकी सहानुभूति ने सम्पूर्ण मानवता को गले लगाया।

शैक्षिक सुधार

राममोहन ने महसूस किया कि उस समय की शिक्षा-पद्धति में बुनियादी सुधार किये बिना देश को रूढ़ियों की तन्द्रा से जगाना सम्भव नहीं होगा। सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धति की जांच-पड़ताल जरूरी है। भारत, संसार में फिर से अपना सही स्थान पा सके इसके लिए एक विवेकपूर्ण और वैज्ञानिक शिक्षा की आवश्यकता थी। जब कम्पनी-सरकार ने एक ऐसा संस्कृत विद्यालय खोलने का निर्णय लिया जिसमें हिन्दू पण्डित तत्कालीन प्रचलित शिक्षा को आगे बढ़ाते तब राममोहन ने इस निर्णय के विरुद्ध आवाज उठाई। वे चाहते थे कि भौतिक विज्ञान—भौतिकी, रसायन शास्त्र तथा गणित आदि की शिक्षा दी जाय। ११ दिसम्बर १८२३ को उन्होंने गवर्नर जनरल लॉर्ड एमहर्स्ट को एक पत्र लिखा। जिसमें उन्होंने कहा, "सरकार एक ऐसा विद्यालय खोल रही है जिसमें हिन्दू पण्डित ऐसी शिक्षा देंगे जो यहाँ पहले से ही प्रचलित है। यह विद्यालय (लॉर्ड बेकन से पहले योरोपीय विद्यालयों की तरह) आज की युवा पीढ़ी को, उनके मस्तिष्क को केवल व्याकरण की सुन्दरता और आध्यात्मिक विशेषताओं से लाद देगा। जिनका सामाजिक जीवन में कोई खास उपयोग नहीं है। आज से दो हज़ार साल पहले का प्रचलित ज्ञान ही यहाँ का विद्यार्थी सीख पायगा। इसमें बढ़ोतरी सिर्फ इतनी होगी कि इस ज्ञान में अब तक के विचारशील व्यक्तियों द्वारा जोड़ी गई व्यर्थ की खोखली टिप्पणियां और हो जाएँगी। ऐसा सारे भारतवर्ष में इस समय हो रहा है। अगर इंगलैण्ड को वास्तविक ज्ञान से अनभिज्ञ रखना होता तो 'बेकोनियन' दर्शन को उस समय की शिक्षा-पद्धति (जो अज्ञान को चिरस्थायी बनाने में पूर्णतया समर्थ थी) के स्थान पर आने की अनुमति न दी जाती। यदि ब्रितानी विधान की यही 'पॉलिसी' है कि इस तरह की शिक्षा द्वारा इस देश को अज्ञान के अन्धकार में रखा जाय, तो संस्कृत-शिक्षा-पद्धति इस देश को अन्धकार में रखने के लिए उत्तम रहेगी। लेकिन जैसाकि ब्रितानी विकास के लिए सरकार जनता को केन्द्र मानती है यह बेहतर होगा कि विकसित और प्रबुद्ध शिक्षा-पद्धति को प्रश्रय दिया जाय। इसमें गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र और

शरीर शास्त्र तथा इसी तरह के अन्य उपयोगी विज्ञान पढ़ाये जा सकते हैं। योरोपीय शिक्षा प्राप्त कुछ प्रबुद्ध व्यक्तियों को इसके लिए नियुक्त किया जा सकता है। उनके लिए एक कॉलेज, जिसमें सभी जरूरी पुस्तकें, अन्य उपकरण तथा वैज्ञानिक यंत्रादि की व्यवस्था हो, खोला जा सकता है।''

भारत के धर्माध्यक्ष विशप हेबर ने इस पत्र को लॉर्ड एमहर्स्ट तक पहुँचा दिया। 'जनरल कमेटी ऑफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन' के सभापति श्री जे० एच० हैरिसन ने लिखा, ''पत्र जबाव देने योग्य नहीं'' लॉर्ड रिपन द्वारा १८८२ में स्थापित शिक्षा कमीशन ने प्रतिवेदित किया,''राममोहन द्वारा प्रस्तावित पॉलिसी को, कमेटी बारह वर्ष के विवाद, मैकाले की वकालत तथा नये गवर्नर जनरल द्वारा एक निर्णायक कदम के बाद स्वीकार कर पाई। राममोहन द्वारा शिक्षा की 'टॉल' पद्धति के विरुद्ध, वैज्ञानिक पद्धति की वकालत को परम्परागत शिक्षा-पद्धति के उपासकों द्वारा अशुद्ध, निर्वचन, अशुद्धोपस्थापन और थोथा आक्रमण कहा गया। राममोहन के विरूद्ध संस्कृत पर आक्रमण तथा संस्कृत को शिक्षा-पद्धति से पूर्णतया हटाने का मिथ्या आरोप लगाया गया। इस आरोप का प्रचार हुआ। जिस व्यक्ति ने संस्कृत साहित्य के अध्ययन और हिन्दू अद्वैतवाद के पालन के लिए १८२५ में वेदान्त महाविद्यालय खोला उसी व्यक्ति के विरुद्ध इस भयंकर झूठ का प्रचार-प्रसार किया। २७ जुलाई १८२६ को लिखे गए एक पत्र में विलियम एडम ने लिखा, ''हाल में राममोहन ने एक अत्यन्त सुन्दर कॉलेज खोला है। उसे वह वेदान्त कॉलेज कहते हैं। इस कॉलेज में कुछ नौजवान अभी एक विज्ञ पण्डित द्वारा संस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस शिक्षा का ध्येय हिन्दू अद्वैतवाद का पालन और प्रवर्त्तन है। इन संस्था में योरोपीय ज्ञान-विज्ञान और ईसाई अद्वैतवाद की शिक्षा देने की इच्छा भी राममोहन की है शर्त सिर्फ़ यही है कि शिक्षा का माध्यम बंगला या संस्कृत हो।

राममोहन बहुत चाहते थे कि भारत में शिक्षा वैज्ञानिक ढंग से दी जाय। ताकि लोग अन्धविश्वास और अज्ञान को दूर करें और ज्ञान के प्रकाश की ओर अग्रसर हों। ठीक उसी तरह जैसा योरोपीय समाज में चर्च-शिक्षा-पद्धति खत्म करके वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार हो रहा था। सन् १८१६ में जब हिन्दू कॉलेज की स्थापना हो रही थी उन्होंने डेविड हेयर और अन्य लोगों का साथ दिया। लेकिन जब कट्टर हिन्दुओं ने राममोहन के हिन्दू कॉलेज की स्थापना में सक्रिय सहयोग का विरोध किया तो वह स्वयं रास्ते से हट गए। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि राममोहन हिन्दू कॉलेज के प्रमुख जन्मदाताओं में से थे।

सुप्रीमकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश सर हाइड ईस्ट, जिनके घर हिन्दू कॉलेज की

स्थापना का निर्णय लेने के लिए १४ मई १८१६ को एक बैठक हुई, ने इंग्लैण्ड के एक जज श्री जे० हैरीगंटन को सभा के चार दिन बाद एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा, "हाल ही में यहाँ एक मजेदार बात हुई है। लगता है समय के साथ-साथ सब-कुछ बदलता रहता है। मई के शुरू में कलकत्ता के एक ब्राह्मण राममोहन मुझसे मिले, इन्हें मैं जानता था। अपने ज्ञान और कर्मठ संघर्ष के लिए यहाँ के प्रमुख लोगों में यह काफी प्रसिद्ध हैं। इन्होंने मुझसे कहा कि योरोपीय आधुनिक संस्थाओं की तरह की एक संस्था यहाँ के प्रमुख हिन्दू स्थापित करना चाहते हैं, जहाँ उनके बच्चों को उदार रूप से शिक्षा मिल सके। राममोहन मेरी मदद चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि इस योजना से मैं सहमत हो जाऊँ और अपने यहाँ एक सभा बुलाकर उनकी सहायता करूँ···जब वह चले गए तब मैंने गवर्नर जनरल से बात की, उन्होंने मेरे सन्देश को सुप्रीम काउंसिल के सामने रखा। सभी सदस्यों ने मेरा समर्थन किया और गवर्नर जनरल की मार्फ़त मुझे सूचित किया गया कि सभा अगर मेरे घर में होती है तो इसमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं है·· १४ मई, १८१६ को मेरे घर बैठक हुई। इसमें पचास से ज्यादा रईस और प्रमुख हिन्दूओं ने—जिसमें चोटी के पण्डित भी थे—भाग लिया। लगभग पचास हज़ार रुपये का चन्दा इकट्ठा हो गया। कुछ और देने का वायदा किया गया···बाद में सभा के कुछ सदस्यों से बातचीत करने पर मुझे पता चला कि उनमें से ख़ास तौर पर एक ऊँचे कुल के धनाढ्य ब्राह्मण राममोहन राय के विरुद्ध हैं, क्योंकि राममोहन ने हाल ही में हिन्दू मूर्ति-पूजा के खिलाफ़ काफी कुछ लिखा था और इस सन्दर्भ में अपने देशवासियों की काफी निन्दा की थी।

इस उद्धरण से यह साबित हो जाता है कि राममोहन हिन्दू कॉलेज के जन्मदाताओं में से एक थे और जब उन्हें यह पता चला कि उनकी मौजूदगी से योजना खटाई में पड़ सकती है तब उन्होंने खुद को योजना के रास्ते से हटा लिया।

सन् १८२२ में राममोहन ने अपने खर्चे से अद्वैतवादी संस्था के तत्वावधान एक हाई इंगलिश स्कूल आरम्भ किया। उसके प्रबन्धकों में डेविड हेयर और रेवरेण्ड एडम थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर इस स्कूल के छात्र थे। अन्य स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा अंग्रेज़ी में दी जाती थी, लेकिन इस स्कूल में विज्ञान बंगला में पढ़ाया जाता था। १८२१ में दिसम्बर से राममोहन ने बंगला साप्ताहिक 'संवाद कौमुदी' का प्रकाशन किया। इसके एक अंक में उन्होंने एक लेख लिखा। इस लेख के ज़रिये सरकार से अपील की गई कि गरीब हिन्दू बच्चों को मुफ़्त शिक्षा प्रदान करने लिए एक स्कूल की स्थापना की जाय। १८२१-२४ के दौरान उन्होंने

अपने साप्ताहिक में यह वैज्ञानिक लेख छापे—'चुम्बक की विशेषताएं', 'मछलियों का आचार', 'एक गुब्बारे का विवरण'। राममोहन ने बंगला में व्याकरण, भूगोल, रेखागणित और खगोल शास्त्र पर पाठ्य पुस्तकें लिखीं।

राममोहन की मृत्यु के काफी बाद उनकी गणित, प्राकृतिक-विज्ञान, रसायन-शास्त्र आदि की शिक्षा-सम्बधी वकालत कारगर हुई। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय शिक्षा में विज्ञान का प्रारम्भ राममोहन राय के कारण ही हुआ।

बंगला गद्य के जनक

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगला गद्य ज्यादातर संस्कृत शब्दों की खिचड़ी और बेहद अनियमित था। उस समय भाषा पण्डितों की दया पर निर्भर थी। ऐसे पण्डितों की दया पर जिनमें ज्यादा-से-ज्यादा क्लिष्ट संस्कृत शब्दों के प्रयोग की होड़ लगी रहती थी। उस समय की यह संस्कृतनिष्ठ बंगला, बंगला भाषा के अतिरिक्त कुछ भी हो सकती थी।

प्रारम्भिक रूप से बंगला गद्य के प्रवर्त्तक सीरामपुर के मिशनरी और फोर्ट विलियम कॉलेज के पण्डित थे। बंगालियों में इसाई धर्म का प्रचार करने के लिए मिशनरियों का स्थानीय भाषा में रुचि लेना जरूरी था। और चूंकि फोर्ट विलियम कॉलेज सरकार चला रही थी इसलिए कॉलेज के प्राध्यापकों के लिए भाषा में रुचि लेना स्वाभाविक था। प्रशासन के लिए भी बंगला गद्य जरूरी था इसलिए ब्रितानी अधिकारियों को बंगला पढ़ाई जाती थी, ताकि जनसाधारण के सम्पर्क में आसानी से आया जा सके।

सन् १७७८ में हॉलहैड की बंगला व्याकरण अंग्रेज़ी में छपी। उसके मुख्य पृष्ठ पर लिखा है, 'पुस्तक विदेशियों के उपयोग के लिए' (फिरंगियम उपकारार्थ) है। दूसरा प्रयास सीरामपुर के प्रसिद्ध मिशनरी डॉ० विलियम कैरी ने किया। सन् १८०१ में कैरी के बंगला व्याकरण का प्रकाशन हुआ। यह व्याकरण भी अंग्रेज़ी में लिखा गया था, और इसका मुख्य उद्देश्य था नये ब्रितानी लेखकों को देशी भाषा से अवगत कराना।

लेकिन बंगालियों के लिए बंगला व्याकरण लिखने का सर्वप्रथम प्रयास राममोहन राय ने किया। इंगलैण्ड जाने से पहले राममोहन ने बंगला भाषा का व्याकरण' (गौड़ीय व्याकरण) लिखा। 'कलकत्ता स्कूल बुकस सोसाइटी' ने इसे सन् १८३३ में प्रकाशित किया। इसमें ग्यारह अध्याय और अड़सठ विषय हैं—व्याकरण की आवश्यकता और उद्देश्य से लेकर अन्त्यानुप्राश तक के विषय उन अध्यायों में आते हैं। सन् १८०१ में बंगला गद्य पर प्रथम पुस्तक प्रकाशित हुई थी। किसी रैमराम वसु द्वारा यह पुस्तक विदेशियों के लिए पाठ्य पुस्तक के रूप में

लिखी गई थी। सन् १८०२ में पण्डित मृत्युंजय विद्यालंकार ने 'बाचिस सिंहासन' छापी। यह निश्चित रूप से रैमराम वसु के 'प्रत्यादित्यचरित' का संशोधित रूप था। जो भी हो विद्यालंकार की पुस्तक संस्कृत शब्दों से भरी थी और प्रमुखत: एक पाठ्य-पुस्तक थी। इस समय का बंगला गद्य पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित था।

बंगला-गद्य-संसार में राममोहन के पदार्पण से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। सन् १८१५ में राममोहन का प्रथम गद्य 'वेदान्त ग्रन्थ' प्रकाशित हुआ। उस समय के प्रचलित बंगला गद्य से यह बिलकुल अलग था। इसमें क्लिष्ट संस्कृत शब्द भी नहीं थे। बंगला गद्य का सही रूप इसीमें दृष्टिगत होता है। राममोहन ने इसकी प्रस्तावना में पाठकों को बंगला गद्य पढ़ने का तरीका बताया है और गद्य के वाक्य बनाने के नियम समझाये हैं। राममोहन के निरभ्र विचार ध्यान और मौलिकता का यह एक असाधारण नमूना है। बंकिमचाद्र चटर्जी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं के अन्तर्गत बंगला गद्य ने जो अद्वितीय साहित्यिक शैली पाई वह राममोहन द्वारा निर्मित बंगला गद्य की बुनियाद के कारण ही सम्भव हो पाया।

बंगला में ध्रुपद गीत

संगीत के क्षेत्र में राममोहन की देन उल्लेखनीय है। १९ वीं शताब्दी के पहले दो दशकों तक बंगला में जो गीत प्रचलित थे वे ज्यादातर ठुमरी, टप्पा, कीर्तन और रामप्रसादी विधि से लिखे जाते थे, बाउल, सारी, जारी और इसी प्रकार के अन्य लोकगीत भी प्रचलित थे। लेकिन बंगला भाषा में ध्रुपद गीत बिलकुल अनजान थे। उस पर सभी ध्रुपद गीतों की रचना हिन्दी में होती थी। बंगला में ध्रुपद गीत की रचना करने वाले पहले व्यक्ति राममोहन थे। सन् १८२८ में अपनी ब्रह्मसभा के लिए इन्होंने ध्रुपद गीत की रचना बंगला में की। इसका भी कारण था। ध्रुपद गीत-जैसी गहराई, सरलता, आकर्षण, सुरों का उत्सरण और तेज़ टप्पा या ठुमरी में नहीं पाया जा सकता। टप्पा और ठुमरी ऐसे अवसरों के लिए हल्के और उल्लासपूर्ण माने जाते हैं। अपनी ब्रह्मसभा के लिए उन्होंने बंगला में बत्तीस ध्रुपद गीतों की रचना की। उनके बाद इस कार्य को ब्रह्म समाज ने सँभाला और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पथ-प्रदर्शन में बंगला ध्रुपद गीत काफी सम्पन्न हुए।

राजनीतिक सुधार का उत्साह

राममोहन राय जानते थे कि धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में जो सुधार वह करना चाहते हैं, उसका प्रभाव भारतीय राजनीतिक प्रगति पर अच्छा पड़ेगा। सन् १८२८ में उन्होंने लिखा, "मुझे अफ़सोस है कि हिन्दुओं का वर्तमान धार्मिक सिद्धान्त राजनीतिक विकास को दृष्टि में रखकर नहीं बनाया गया। जातियों की विभिन्नताओं और उनके अनगिनत विभाजन ने उन्हें राजनीति से बिलकुल अलग कर दिया है। धार्मिक विशेषताओं, उत्सवों, शुद्धीकरण के कानून ने इन्हें किसी भी साहसिक कार्य के अयोग्य बना दिया है। इसलिए मैं सोचता हूँ उनके धर्म में कुछ परिवर्तन आवश्यक है, कम-से-कम राजनीतिक लाभ और सामाजिक चैन की दृष्टि से।" अतः राममोहन ने धार्मिक सुधार और राज-नीतिक तथा सामाजिक विकास के आन्तरिक सम्बन्ध को पहचान लिया था।

सन् १८२१-२२ में राममोहन ने दो साप्ताहिक निकाले। बंगला में 'सम्वाद-'कौमुदी' और फ़ारसी में 'मिरात-उल-अखबार'। 'सम्वाद कौमुदी' के पहले अंक में उन्होंने 'जूरी ट्रायल' की प्रशंसा और प्रेस की स्वतन्त्रता के पक्ष में एक लेख लिखा। 'जूरी के ट्रायल' का आरम्भ १७२६ में मेयरकोर्ट में हुआ था। जब मेयर कोर्ट सुप्रीम कोर्ट में बदल गया तब भी वही सिलसिला चलता रहा। श्री वॉएन ने 'इण्डियन जूरी बिल' प्रस्तावित किया, जिसे ५ मई १८२६ में संसद् द्वारा स्वीकृति दे दी गई। लेकिन भारतीयों के विरूद्ध भेद-भाव बना रहा। भारतीयों को मात्र 'पेटी जूरी' में बैठने की इज़ाज़त थी, 'ग्रैण्ड जूरीज़' में नहीं; और ईसाइयों के मुकदमों में भी नहीं। राममोहन ने भारतीयों के प्रति इस भेद-भाव के ख़िलाफ़ अथक प्रचार जारी रखा।

ब्रितानी संसद् के नाम उन्होंने एक आवेदन-पत्र भेजा, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों के हस्ताक्षर थे। साथ में उनकी व्यक्तिगत टिप्पणी भी थी। ५ जून १८२९ को आवेदन-पत्र संसद् के सामने रखा गया और १८जून १८३२ को ग्रांट की 'ईस्ट इण्डिया जस्टिस ऑफ पीस' और 'जूरी बिल' को मंजूर कर लिया

गया। सिरामपुर से मिशनरियों के 'समाचार-दर्पण' ने इस बिल की स्वीकृति पर राममोहन को बधाई दी।

प्रेस की प्रतिबन्धक व्यवस्था (सेंसरशिप) सर्वप्रथम लॉर्ड वैलज़ली के समय में लागू की गई थी। यद्यपि १८१८ में लॉर्ड मोयरा द्वारा यह हटा लिया गया था, लेकिन १८२३ के एक्टिंग गवर्नर जनरल श्री जॉन एडम ने प्रेस के खिलाफ़ एक व्यवस्था आरोपित की थी। गवर्नर जनरल की कौंसिल के एक सदस्य डब्ल्यू० बी० वेली ने इस आधार पर कि देशी प्रेस विशेषाधिकार प्राप्त प्रेसों को भला-बुरा कह रहे हैं प्रेस की स्वतंत्रता रद्द कर दिये जाने का समर्थन किया। इस संदर्भ में 'मिरात-उल-अखबार' का ज़िक्र किया गया। मार्च १८२३ में प्रेस-व्यवस्था आरोपित होने के कारण राममोहन ने 'मिरात-उल-अखबार' का प्रकाशन बन्द कर दिया। अगस्त, १८२२ के मिरात-उल-अखबार' में प्रकाशित त्रियेक परमेश्वर के सिद्धान्तों से सम्बन्धित निश्चित खोज़ों को सत्ताधारियों ने 'अत्यधिक आपत्तिजनक' माना।

१० अक्तूबर १८२२ के सुप्रीम कौंसिल के विवरण में हमें निम्नलिखित टिप्पणी मिलती है :

"···दूसरे फ़ारसी पत्र 'मिरात-उल-अखबार' के विषय अधिकतर ऐसे ही रहे हैं जैसा ऊपर कहा है। लेकिन सम्पादक की ब्रह्मज्ञान विषयक वाद-विवाद की व्यवस्थापना ने मौके का फायदा उठाकर त्रियेक परमेश्वर पर अपनी टिप्पणी छापी है जो गूढ़ और प्रकारान्तर से कही गई होने पर भी मुझे लगता है अत्यधिक आपत्तिजनक है।" १२ फरवरी १८२३ को जे०एस० बकिंघम('कलकत्ता जर्नल' के सम्पादक) को दो महीने के अन्दर भारत छोड़ देने का आदेश मिला, क्योंकि उन्होंने कुछ ऐसे लेख छापे थे जो सरकार की दृष्टि में आक्रामक थे। ख़ास तौर पर वह लेख, जिसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तर्गत स्टेशनरी क्लर्क के पद की स्वीकृति के लिए स्कॉटलैण्ड के 'न्यू चर्च' के हैडमिनिस्टर डॉ० ब्रायक की आलोचना की गई थी। बकिंघम के अनुसार किसी ऐसे पद कीस् वीकृति किसी चर्च के मिनिस्टर द्वारा अनुचित थी। और इस लेख के कारण १२ फरवरी १८२३ को बकिंघम को दो महीने के अन्दर भारत छोड़ने का आदेश मिला।

यह आदेश जे० ऐडम द्वारा दिया गया था, जिसने लॉर्ड हेस्टिंग्ज़ के बाद अस्थायी रूप से गवर्नर जनरल का कार्य-भार सँभाला था। 'कलकत्ता जर्नल' को बन्द किये जाने पर बाध्य कर दिया गया। सहायक सम्पादक श्री सैण्डफ़ोर्ड आॅनोर्ट गिरफ़्तार कर लिए गए और उन्हें भारत से निष्कासित कर दिया गया। १४ मार्च को श्री एडम ने एक नई प्रेस-घोषणा प्रसारित की, जिसमें अखबारों के

मालिकों और सम्पादकों के लिए सरकार से लाइसेंस प्राप्त करना ज़रूरी हो गया और सुप्रीम कोर्ट में पंजीकरण के लिए प्रेस घोषणा के पेश किये जाने के ठीक दो दिन बाद, १७ मार्च १८२३ को राममोहन, द्वारकानाथ ठाकुर, प्रसन्न-कुमार ठाकुर और तीन अन्य व्यक्तियों ने सुप्रीम कोर्ट और 'किंग इन कौंसिल' के नाम इस घोषणा के विरुद्ध एक अपील की। अपील का प्रशंसनीय मसौदा स्वयं राममोहन ने तैयार किया था। मसौदा इस प्रकार था, "....ज्ञान का प्रसार एक-दम रुक जायगा और इस ज्ञान-प्रसार से जो मानसिक विकास हो रहा है, चाहे सम्पन्न पूर्वी भाषाओं से क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद के जरिये, चाहे विदेशी प्रकाशनों द्वारा प्राप्त साहित्यिक ज्ञान-प्रसार के जरिये...एक योग्य शासक की दृष्टि से इतनी ही महत्त्वपूर्ण बात है। जनता से सीधा सम्पर्क, जो इसके बगैर नहीं हो सकता। देश के विभिन्न भागों में प्रबन्धक अधिकारियों का व्यवहार जनता के प्रति कैसा है यह बात सम्राट् तक नहीं पहुँच सकती। इससे देशवासी सम्राट् और उनकी सलाहकार समिति तक अपनी बात नहीं पहुँचा सकते। स्थानीय सरकार सम्राट् की सुदूर देश की विश्वासपात्र प्रजा के साथ कैसा व्यवहार कर रही है यह सम्राट् को पता नहीं चल सकता। जैसा कि इस समय हो रहा था। अब कोई सूचना इंगलैण्ड तक नहीं पहुँच सकती। चाहे देशी प्रकाशनों के अनुवादों के ज़रिये जो यहाँ अंग्रेज़ी अखबारों में छपते रहते हैं और योरोप भेजे जाते हैं, या अंग्रेज़ी अनुवादों के ज़रिये जो यहाँ के लोग इस संविधान के लागू होने से पहले करते रहे हैं...

"हर योग्य शासक, जो मानव-स्वभाव की अपूर्वता को समझता है और दुनिया के 'आन्तरिक शासक'(अर्थात् ईश्वर) का सम्मान करता है अपने विशाल राज्य के महान् दायित्व के प्रति सजग रहता है। वह इस बात का ध्यान रखता है कि उस तक हर ऐसे व्यक्ति की पहुँच होनी चाहिए जो जनता के विषय में उससे कुछ कहना चाहता है। ताकि यह स्पष्ट हो सके कि जनता को अपने शासक की ज़रूरत कहाँ कितनी है। और इस उद्देश्य-प्राप्ति का एक ही रास्ता है—'अप्रतिबन्धित प्रकाशन की स्वतंत्रता'।"

सुप्रीम कोर्ट ने अपील बरख्वास्त कर दी और इस संदर्भ में अपना विरोध प्रकट करते हुए राममोहन ने अपने फ़ारसी साप्ताहिक का प्रकाशन बन्द कर दिया।

१८३१ में 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' की 'सेलैक्ट कमेटी' के सामने अपनी सहादत के रूप में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के 'चार्ट' के नवीनीकरण के मौके पर राममोहन ने सुझाया कि ज़ुडिशियल एसेसरों और ज्वाइंट जजों के पदों पर

भारतीयों की नियुक्ति होनी चाहिए। उन्होंने नियमित जन-रजिस्टरों की मांग की। सिविल तथा फ़ौजदारी कानून संहिता की स्थापना की बात कही। उन्होंने सिफ़ारिश की कि सरकारी खर्चे कम होने चाहिएँ। स्थायी सेना की जगह किसानों को 'प्रजारक्षक दल' बनाना चाहिएँ। न्याय-सम्बन्धी मामलों से प्रबन्धक अलग रखे जाने चाहिएँ। ग्राम पंचायत का न्याय का अधिकार-प्राप्त समितियों का प्रचार बेहतर होगा।

१८४२ में 'बंगाली स्पेक्टेटर' ने लिखा, "बाद के 'चार्टर' में (१८३३) जो सुविधाएँ हमें मिली हैं उनके लिए हम बड़े पैमाने पर राममोहन के ऋणी हैं," 'समाचार-दर्पण' ने लिखा, "आज ही नहीं, भविष्य में भी देश को ये सुविधाएँ दिलवाने में वह सहायक होंगे उन्हें देश का संरक्षक माना जायगा।" इंगलैण्ड में राममोहन के सचिव श्री ऑर्नोर्ट ने राममोहन की राय दर्ज करके छोड़ा था कि भारत में इंगलैण्ड के राजनीतिक और सांस्कृतिक मिशन के लिए उन्होंने चालीस वर्ष की सीमा निर्धारित की थी। उनका विश्वास था कि इतने समय में इंगलैण्ड भारत को विश्व-संस्कृति और गणतांत्रिक सरकार से परिचित करा देगा।

राममोहन ने इंगलैण्ड के 'रिफॉर्म आन्दोलन' का सच्चे हृदय से समर्थन किया। उनके अनुसार यह "सुधारवादियों और सुधार-विरोधियों के बीच का संघ विश्वव्यापी तानाशाही और स्वतंत्रता, न्याय-अन्याय, गलत-सही के बीच का संघर्ष था। लेकिन···हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि कट्टरता और स्वेच्छाचारिता के बावजूद धर्म और राजनीति के क्षेत्र में स्वतंत्र-आदर्श काफी अरसे से अपनी जगह बना रहे थे।"

जून १८३२ में जब आखिरकार 'लॉर्ड्स' ने बिल पास कर दिया तब राममोहन बहुत खुश हुए। उन्होंने अपने मित्र रथबोन को लिखा, "तानाशाहों के तीव्र विरोध और राजनीतिक आदर्शों की मांग के बावजूद 'रिफ़ॉर्म बिल' की पूरी सफलता पर अब मैं खुश हूँ। राष्ट्र कुछ चुने हुए लोगों का शिकार नहीं हो सकता जो दूसरों की क़ीमत पर, पचास वर्षों से अधिक के उनके भग्नावशेष पर अपनी तिजौरी भरते हैं···'रिफ़ॉर्म बिल' अगर पास न हुआ होता तो एक व्यक्ति की हैसियत से मैं अपने सम्बन्ध इस देश से तोड़ देता···खुदा का शुक्र है, अब मुझे आपकी ही तरह की एक सह-प्रजा होने पर अभिमान है। मुझे हार्दिक खुशी है कि राष्ट्र की मुक्ति को देखने का सौभाग्य मुझे मिला है और राष्ट्र की ही क्यों, पूरे विश्व की।"

भारत के ही नहीं बल्कि दुनिया के हर देश के गणतांत्रिक अधिकार और स्वतंत्रता के संघर्ष में राममोहन अगुआ रहे। १८२३ में जब स्पेनी तानाशाही से

दक्षिण अमेरिका का स्पेनी क्षेत्र मुक्त हुआ और यह समाचार जब राममोहन को मिला तब उन्होंने अपने मित्रों को दावत दी। किसी ने इस मौके पर दावत का कारण पूछा तो उन्होंने कहा, "मेरे साथी जहाँ भी हों, हमसे उनका सीधा सम्बन्ध हो न हो, उनका धर्म अलग हो, उनकी भाषा अलग हो तो क्या मैं उनके सुख-दुःख में शामिल न होऊँ ?" सितम्बर १८२३ में राममोहन के एक अंग्रेज़ मित्र ने, 'एडिनबर्ग' मैगज़ीन में लिखा, "दक्षिण अमेरिका की उद्धार-प्रक्रिया में उन्होने जो सजग रुचि ली उससे उनके मस्तिष्क की विशालता और उदारता का एहसास होता है।"

पुर्तगाल में संवैधानिक सरकार लागू किये जाने की सूचना पाकर राममोहन बड़े खुश हुए। तुर्कों के खिलाफ़ यूनानियों के स्वतंत्रता-संघर्ष का उन्होंने समर्थन किया। सन् १८१५ के तत्काल बाद नेपिल्स में एक 'कार्बोनरी सोसाइटी' की स्थापना हुई। यह सोसाइटी जल्दी ही लोकप्रिय हो गई। १८२०-२१ में नियों-पालिटन कार्बोनरी नेपिल्स के राजा के खिलाफ एक आन्दोलन लेकर खड़ा हुआ, जिसमें संविधान की माँग की गई। सारे वर्गों में समानता की बात पर ज़ोर दिया गया। अपना भविष्य आप निर्धारित करने का अधिकार माँगा गया। आन्दोलन कुचल दिया गया और दो प्रमुख नेताओं—मोरेली और सिलवटी को फाँसी दे दी गई। इस समाचार से राममोहन को इतना दुःख हुआ कि श्री बकिंघम के साथ अपनी एक निश्चित मुलाकात रद्द करते हुए ११अगस्त १८२१ को उन्होंने लिखा, "इस मध्यान्ह आपकी दावत में शामिल न हो पाने के लिए मैं विवश हूँ, योरोप के ताजा समाचारों से मेरा मन बड़ा दुखी है···इस दुःखद समाचार से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मैं यह देखने के लिए जीवित नहीं रहूँगा कि विश्व-स्वतंत्रता, योरोपीय राष्ट्र एशियायी देश—खास तौर पर जहां योरोपीय उपनिवेश हैं—में सुरक्षित रहे। जितना था उतना ही बहुत था। इन स्थितियों में मैं खुद को 'नियोपालिटनों' के साथ पाता हूँ। उनके दुश्मन हमारे दुश्मन हैं। स्वाधीनता के दुश्मन और निरंकुशता के दोस्त अन्ततः कभी सफल हुए हैं।"

राममोहन ने आयरलैण्ड पर ब्रिटिश अधिकार का विरोध किया और 'मिरात-उल-अखबार' में उन्होंने इस विषय में लिखा। आयरलैण्ड के अकालग्रस्त लोगों के लिए उन्होंने सहायतार्थ धन भेजा। फ्रांसीसी क्रान्ति की सूचना ने उन्हें गहराई से प्रभावित किया। क्रान्ति के तिरंगे झण्डे का अभिवादन करने की हड़-बड़ी में नाव से उतरते समय उनके पैर में गहरी चोट आ गई। राममोहन के

मन में स्वाधीनता के लिए असीम प्रेम था और उनकी धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों का स्रोत भी यही था। स्वाधीनता के प्रति इस प्रेम में पूरी मानवता छिपी थी। १८वीं शताब्दी के वह पहले व्यक्ति थे जिसे सही मानों में अन्तर्राष्ट्रवादी कहा जा सकता है।

२६ दिसम्बर १८३१ को लन्दन से प्रिंस टेलीरैण्ड के नाम लिखा गया उनका पत्र अपने ढंग का एक अनोखा दस्तावेज है। उस पत्र में उन्होंने फ्रांसीसी विदेश मंत्री से निवेदन किया था कि फ्रांस जाने के लिए उन्हें पासपोर्ट की स्वीकृति दी जाय। इस पत्र में राममोहन ने पासपोर्ट की जरूरत समाप्त कर देने की सिफारिश की थी और कहा था, "इस तरह के नियम एशियायी देशों में भी अपरिचित हैं।" हालाँकि धार्मिक पूर्वाग्रहों और राजनीतिक विभिन्नताओं के कारण ये एकदम विरोधी हैं। चीन एक अपवाद है, जहाँ विदेशियों के प्रति ईर्ष्या और नये विचार, रीति-रिवाजों को अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता। अतः मैं इस बात को नहीं मान सकता कि जो देश अन्य बातों में अपने शिष्टाचार और उदारता के लिए इतना मशहूर हो, वह इस बात से अनजान बना रहे। अब उस बात को मान लिया गया है कि केवल धर्म ही नहीं पूर्वाग्रह-रहित सूझ-बूझ और वैज्ञानिक खोजों से इस नतीजे पर पहुँचा जा चुका है कि समस्त मानवता एक विशाल परिवार है, जिसमें अनेक राष्ट्र, अनेक जातियाँ उसकी शाखाओं से अधिक कुछ नहीं हैं। अतः सारे देशों के उदार लोग इस बात को महसूस करते हैं कि हर प्रकार से मानवीय आदान-प्रदान समस्त मानवता के कल्याण के लिए जरूरी है।

इसी पत्र में राममोहन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की बात लिखी, जिसके द्वारा राष्ट्रों के आपसी मन-मुटावों को दूर किया जा सके। उन्होंने लिखा, "जहाँ तक मुझे लगता है संवैधानिक सरकार ज़्यादा कारगर हो सकती है। अगर दो देशों की राजनीतिक विभिन्नताओं की हर बात एक ऐसी कांग्रेस के सामने रखी जाय जो हर संसद् से समान रूप से चुने हुए सदस्यों से बनी हो। बहुमत प्राप्त सदस्य एक वर्ष के लिए इस कांग्रेस के सदस्य बनें। हर वर्ष की सभा एक देश में दूसरे की दूसरे देश में होनी चाहिए···इस कांग्रेस के जरिये किन्हीं दो सभ्य देशों के बीच व्यावसायिक या राजनीतिक झगड़े संवैधानिक सरकार के साथ निपटाये जा सकते हैं। जहाँ दोनों के हितों का ध्यान रखा जाय। दोनों को न्याय का हकदार माना जाय और यह परम्परा पीढ़ियों तक जा सकती है।"

इन स्मरणीय पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि सन् १८३१ में ही राममोहन एक

ऐसी व्यवस्था की बात सोच चुके थे जो राष्ट्रों के आपसी झगड़ों को सुलझाती रहें और उनमें आपसी अमन-चैन को कायम रखे और इस प्रकार विश्व-शान्ति की स्थापना हो। दुनिया के किसी राजनीतिक विचारक से बहुत पहले उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ की बात उसी समय सोच ली थी।

प्रवर्त्तक पत्रकार

राममोहन राय द्वरा शुरू किये गए सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक सुधारों के आन्दोलन के उदार उभार के लिए एक उदार अखबार की अत्यन्त जरूरत थी। समय की माँग के कारण बंगाल की, और खास तौर पर कलकत्ता की, पत्रकारिता में बहुमुखी विकास हुआ।

कलकत्ता से १८१६ ई० में सबसे पहले 'बंगला गज़ट' नामक बंगला साप्ताहिक की शुरूआत हुई। इसका संचालन राममोहन राय की 'आत्मीय सभा' के उत्साही सदस्य कर रहे थे। १८२० ई० तक इसका प्रकाशन होता रहा।

सिरामपुर के क्रिश्चियन मिशन ने १८१७ ई० में बंगला साप्ताहिक 'समाचार दर्पण' का और अंग्रेज़ी में एक पत्रिका 'फ्रेंड ऑफ इण्डिया' का प्रकाशन आरम्भ किया।

अंग्रेज़ी में पहले उदार अखबार 'कलकत्ता जर्नल' का प्रकाशन, जेम्स सिल्क बकिंघम ने १८१८ ई० में शुरू किया। १८२० ई० में बंगला साप्ताहिक 'सम्वाद कौमुदी' का प्रकाशन ताराचन्द दत्त और भवानीचरण वन्धोपाध्याय ने शुरू किया। जब भवानीचरण ने सम्पादन छोड़ा तो राममोहन राय ने इसका कार्य-भार सँभाला।

राममोहन राय ने फारसी का साप्ताहिक 'मिरात-उल-अखबार' भी शुरू किया। १८२३ ई० में इसका प्रकाशन बन्द हो गया।

रूढ़ हिन्दूवाद का मुखपत्र था 'समाचार चन्द्रिका'। द्वारकानाथ टैगोर से अत्यधिक प्रभावित डॉक्टर आर० एम मार्टिन ने मई १८२९ में 'बंगाल हेराल्ड' का प्रकाशन शुरू किया। राममोहन राय और द्वारकानाथ टैगोर इस अखबार के मालिकों में से थे।

राममोहन राय के अनुयायी नीलरत्न हाल्दार ने बंगला, फारसी और नागरी में प्रकाशित होने वाले 'बंगदूत' का सम्पादन किया।

प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता सैम्युल स्मिथ ने 'बंगाल हलकारू' की शुरूआत की। द्वारकानाथ टैगोर ने इस पत्र को भी बड़े पैमाने पर आर्थिक सहायता दी।

'द इण्डिया गज़ट' का प्रकाशन १८३१ में शुरू हुआ। द्वारकानाथ इसके मालिकों में से थे। यह अपने समय के अग्रणी अखबारों में से एक था।

अर्द्ध-सरकारी मुखपत्र 'जॉनबुल' १८२१ में शुरू हुआ। यह बदनाम अनुदारवादी अखबार था। १८३२ में यह बिक गया। द्वारकानाथ टैगोर के मित्र स्टाक्वेलर ने इसे द्वारकानाथ टैगोर की आर्थिक सहायता से खरीद लिया। इसका नाम बदलकर 'द इंग्लिशमैन' रख दिया गया।

यहाँ यह भी बता देना उचित होगा कि रवीन्द्रनाथ टैगोर के दादा द्वारकानाथ टैगोर मेधावी, धनिक और प्रभावशाली व्यक्ति थे। वह उदार भावना से ओत-प्रोत और राममोहन राय के प्रशंसक तथा मित्र थे। सभी सुधारवादी गतिविधियों में राममोहन राय को उनका निस्संकोच और पूरा सहयोग प्राप्त था।

उन्नीसवीं शताब्दी के पहले सालों में कलकत्ता में उदारवादी पत्रकारिता की स्थापना में द्वारकानाथ टैगोर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उनका उद्देश्य राममोहन राय द्वारा संचालित आन्दोलन की बात जनता तक पहुँचाकर सबल जनमत तैयार करना था। द्वारकानाथ ने अपने असर-रसूख से ब्रितानी संसद्-सदस्य जॉर्ज़ थामसन को भारत में लाकर राममोहन राय द्वारा संचालित उदारवादी राजनीति की नींव मजबूत की।

बंगला पत्रकारिता राममोहन राय द्वारा संचालित आन्दोलन और द्वारकानाथ टैगोर की दूरदर्शी और प्रबुद्ध उदारता के लिए ऋणी रहेगी।

आर्थिक सुधार

भारतीय जनता की दयनीय आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए राममोहन राय लगातार प्रयत्न-रत रहे। १८३२ में राममोहन राय ने संसदीय समिति के सामने गवाही देते हुए कहा, "किसानों की हालत बहुत शोचनीय है, वे जमींदारों की महत्त्वाकांक्षा और लोलुपता का शिकार हैं···लगान की दर निश्चित करने की सरकार ने ज़मींदारों को पूरी छूट दे रखी है। इस कर का रत्ती-भर भी अंश किसानों को नहीं दिया जाता।" उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि १७९३ ई० के पर्मानेंट सेटलमेंट ने जहाँ ज़मीदारों को लाभ पहुँचाया है वहाँ गरीब किसान दुर्दशा का ही हिस्सा पा रहे थे। किराया इतना ज्यादा था कि किसानों की हालत पहले से भी बदतर हो रही थी। राममोहन राय ने किराया बढ़ाये जाने को गैरकानूनी घोषित करते हुए इसे कम करने की मांग की। उन्होंने भारतीय किसानों (रयोतों) के साथ स्थायी समझौते का सुझाव दिया, ताकि जमींदार किसानों को परेशान न कर सकें। उन्होंने कहा कि जमीन पर कर कम करने से होने वाली कमी को एशो-आराम के साधनों पर कर बढ़ाकर पूरा किया जा सकता है। बड़ी तनख्वाहें पाने वाले अंग्रेज़ अफसरों की जगह हिन्दुस्तानी कलक्टरों को नौकरी देकर खर्च कम किया जा सकता है। गाँव की मण्डियों के मालिक के तौर पर ज़मींदार किसानों से फसल बेचने का कर जबरन वसूलते थे। राममोहन राय ने ज़मींदारों की इस जबरदस्ती के खिलाफ़ भी आवाज उठाई।

राममोहन राय ने नमक के व्यापार पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरों के एकाधिकारों का विरोध किया। वे इसकी साधारण कीमत से एक हज़ार प्रतिशत बढ़ाकर नमक बेचते थे। लगभग एक लाख पच्चीस हज़ार मोलंगी (नमक-मज़दूर) बंगाल में नमक बनाते थे। इन बेचारों की स्थिति गुलामों-जैसी थी। नमक के उत्पादन के लिए सरकार एजेण्ट नियुक्त करती थी। इसके बाद नमक को कलकत्ता ले जाकर एकमुश्त थोक में बेचा जाता। सारे व्यापार पर कुछ भारतीय अमीरों का कब्जा था। वे इसे दबाकर रखते थे और मिलावट भी

किया करते थे। कम्पनी ने विदेशी नमक के आयात पर कर की दर बहुत ज्यादा रखी थी।

राममोहन राय ने नमक के एकाधिकार के खिलाफ आवाज उठाई। क्योंकि सभी लोग नमक की कमी महसूस करते थे इसलिए उन्होंने तर्क दिया कि अगर नमक की कीमत कम कर दी जाय तो इसका इस्तेमाल ज्यादा मात्रा में होगा। सस्ता और बढ़िया होने के कारण अंग्रेजी नमक के आयात की अनुमति देकर और मोलंगियों को कृषि के काम पर लगाया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि मिलावट का स्तर यह था कि मिट्टी और नमक में भेद कर पाना सम्भव नहीं था। संसदीय उच्च समिति (पार्लियामेंटरी सिलैक्ट कमेटी) ने भी राममोहन राय के एकाधिकार-विरोधी मत से सहमति प्रकट की। इस तरह उनका आन्दोलन सफल हुआ और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का नमक-एकाधिकार खत्म हो गया।

राममोहन राय ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने ब्रितानी शासकों द्वारा भारत की सम्पत्ति को बड़े ही साजिशाना ढंग से बाहर ले जाने के बारे में भारतीय जनता को आगाह किया। यह भारत के विजेताओं को भेंट के तौर पर समझा जा रहा था। 'भारत राजस्व व्यवस्था' पर सवालों के जवाब देते हुए राममोहन राय ने कहा कि अवकाश-प्राप्त अंग्रेजी अफसर वर्ग देश की अपरिमित धन-सम्पदा को विदेश ले जा रहा था। उन्होंने देश की इस लूट को साबित करने के लिए कुछ सूचियाँ तैयार कीं और लिखा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी पहले महा लेखापाल और बाद में महालेखा निरीक्षक रह चुके मैसर्स लॉयड एण्ड मेलबिल के हाउस ऑफ लॉर्ड्स की सिलैक्ट कमेटी के सामने २३ फरवरी १८३० ई० को दिये गए बयान में बताया गया था कि भारत से प्राप्त होने वाले राजस्व का लगभग ३० लाख पौंड प्रतिवर्ष इंग्लैंड में लग रहा था। इसमें 'बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल' और 'इण्डिया हाउस' का खर्च, अनुपस्थिति भत्ता, यूरोप में स्थित सरकारी और फौजी अफसरों को भारत में की गई सेवाओं के एवज में ब्याज सहित पेंशन आदि की रकम भी शामिल है और भारत में क्षेत्रीय भण्डार के लिए भेजे जाने वाले ४,५३,५८८ पौंड की राशि इससे अलहदा है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बंगाल-स्थित कुशल एवं वरिष्ठ अधिकारी ने अपनी पुस्तक 'ऑन कॉलोनियल पालिसी एज एप्लीकेबल टू द गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया' (पृष्ठ ७०) में बंगाल सरकार के बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के नाम लिखे गए २८ जून १८१० ई० के एक खत को उद्धृत किया गया। निदेशकों का कहना है कि यह स्वीकार करना गलत नहीं कि व्यक्तिगत खातों के माध्यम से लन्दन

भेजी जाने वाली रकम की दर लगभग २० लाख पौंड प्रतिवर्ष रही है। इस तथा अन्य प्रामाणिक दस्तावेजों के आधार पर लेखक ने अनुमान लगाया कि सार्वजनिक और व्यक्तिगत तौर पर भारत से १७६५ ई० और १८२० ई० के बीच १० करोड़ पौंड की भेंट ली गई।

उधर इंग्लैण्ड में स्वतन्त्र व्यापारियों और इजारेदारों में काफी बड़े पैमाने पर रस्साकशी चल रही थी। राममोहन राय ने स्वतन्त्र व्यापारियों के पक्ष में और इजारेदारों के विरोध में अपने विचार प्रकट किये और इस काम में उन्हें द्वारकानाथ टैगोर का उल्लेखनीय समर्थन भी मिला। दोनों ने अपनी दूरदर्शिता से जान लिया कि इतिहास, भारत पर ब्रितानी शासन के माध्यम से, भारत को पिछले दशक में मुसलमानों के शासन की जड़ता से मुक्त करा रहा है। लम्बे अरसे से भारत विश्व-इतिहास की मुख्य धारा से अलग-थलग और बाहर रहा था। इंग्लैण्ड भारत को इसके अस्तित्व के सम्पूर्णत्व में उस मुख्य धारा में लाने वाली ताकत थी। आर्थिक क्षेत्र में भी इंग्लैंड ने भारत के औद्योगिक क्रान्ति के काम को अनजाने ही शुरू कर दिया। राममोहन और द्वारकानाथ ने बंगाल के क़स्बों में अंग्रेज़ों द्वारा उद्योगों की स्थापना का समर्थन इसलिए किया कि जमींदारों के बर्बर अत्याचारों से बचने के लिए किसानों को रास्ता मिल सके। यह प्रक्रिया भी अन्य ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की तरह क्रूर ही थी। जो कुछ भी हुआ अवश्यम्भावी था। सामन्ती आर्थिक व्यवस्था से पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आसानी से होने का उदाहरण संसार के किसी भी इतिहास में नहीं मिलता। भारत में भी इसके विपरीत नहीं हो सकता था। राममोहन राय ने भारत की इस आर्थिक क्रान्ति का समर्थन किया और द्वारकानाथ-जैसे दोस्त से पूरी वफ़ादारी से उन्हें सहयोग प्राप्त हुआ।

ब्रह्मसभा और ब्रह्मसमाज

१८२७ ई० में रेवरेण्ड विलियम एडम ने आर० ड्यूटन के नाम एक पत्र में 'यूनिटेरियन एसोसिएसन' के बारे में लिखा : "इसके वर्तमान सदस्य हैं सर्वोच्च न्यायालय के बैरिस्टर थियोडर डिकन्स, मैकिन्टाश एण्ड कम्पनी के एक व्यापारी जॉर्ज जेम्स गार्डन; एक वकील विलियम टेट, कम्पनी के शल्य-चिकित्सक बी० डब्ल्यू० मैक्लायड; कम्पनी के प्रतिज्ञा-मुक्त अधिकारी नार्मनकर; राममोहन राय, द्वारकानाथ टैगोर, प्रसन्नकुमार टैगोर, राधाप्रसाद राय (राममोहन राय के ज्येष्ठ पुत्र) और मैं।

यूनिटेरियन एसोसिएसन बहुत कम समय में ही खत्म हो गई। इस संसथ के विघटन के बाद राममोहन राय के शिष्यों ने एकेश्वरवादी और आराधना के के लिए समर्पित संस्था की स्थापना करना अत्यन्त आवश्यक समझा। राममोहन राय के अनुयायी चन्द्रशेखर ने उनको काफी समझाया कि एकेश्वरवादियों के लिए कोई ऐसा स्थान होना चाहिए, जहाँ वे बिना किसी व्यवधान के अद्वैत गोष्ठी जमा सकें। राममोहन ने उनका सुझाव माना और २० अगस्त १८२८ को ब्रह्म समाज का उद्घाटन हुआ। चन्द्रनगरवासी रामकमल वसु का घर किराये पर लिया गया। बसु मोशाय का अंग्रेज़ों से व्यापारिक सम्बन्ध था इसलिए कलकत्ता में उन्हें फिरंगी कमल वसु के नाम से लोग जानते थे। ब्रह्मसभा का सबसे पहला स्थान किराये पर ४८ चित्तपुर रोड था। राममोहन राय के एक अनुयायी ताराचन्द चक्रवर्ती ब्रह्मसभा के प्रथम सचिव नियुक्त किये गए। इसी किराये के मकान में ब्रह्मसभा दो साल तक चलती रही। २३ जनवरी १८३० ई० को इसे अपना घर मिल पाया। ब्रह्मसभा के उद्घाटन के समय से ही एक विरोधी संस्था धर्मसभा—रूढ़िवादी हिन्दुओं ने भी स्थापित की। रूढ़िवादी हिन्दुओं के जाने-माने अगुआ राधाकान्त देव इसके भी नेता बन बैठे।

नए मकान के उद्घाटन के समय सिर्फ़ एक ही अंग्रेज़ मांटगोमरी मार्टिन हाजिर था। इस उद्घाटन का विवरण उसकी किताब 'हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश कॉलोनीज़' में मिलता है। इस विवरण से पता चलता है कि इस अवसर पर ५००

हिन्दू उपस्थित थे। उद्घाटन से पहले ८ जनवरी १८३० ई० को राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज ट्रस्ट का दस्तावेज तैयार किया। यह दस्तावेज अनूठा लेख है। जिसमें उदार सहिष्णुता और सार्वभौमिकता का सर्वत्र साम्राज्य है। इस दस्तावेज का एक अंश है—"···ट्रस्टी हमेशा इस ट्रस्ट की इमारत, प्रांगण, चल सम्पत्ति या आवास और उनसे सम्बद्ध उपांगों को सभी तरह के लोगों की सभाओं के लिए इस्तेमाल की इजाजत देंगे। किसी भी तरह का भेदभाव नहीं बरता जायगा। लेकिन इसके लिए एक ही शर्त है कि वे मर्यादा का पालन करें, सभ्य, धार्मिक एवं श्रद्धालु व्यवहार से शाश्वत और सनातन सत्ता की उपासना-पूजा में व्यस्त हों। वही इस ब्रह्माण्ड की रचयिता एवं रक्षक है···और···किसी भी वस्तु, जीव या निर्जीव, जो भी है या आगे होगी, जो किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के लिए पूजनीय हो, की भर्त्सना, अनादर या उपेक्षा सीधे या परोक्ष रूप में नहीं करे, चाहे वह धर्मोपदेश में हो, स्तुति या ईश-भजन में हो या उस आराधना में पूजा की अन्य किसी विधा द्वारा कथित, प्रतिपादित या प्रयुक्त हो··· जब तक कि यह भर्त्सना, अनादर या उपेक्षा ब्रह्माण्ड के रचयिता और रक्षक का संकल्प करने में सहायक न हो और दानशीलता, नैतिकता, पवित्रता, उदारता, सदाचार और विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के बीच एकता का सूत्र मज़बूत करने का कारण न बने।"

ट्रस्ट के इस दस्तावेज से स्पष्ट हो जाता है कि राममोहन राय ने किसी नए धर्म या सम्प्रदाय के रूप में ब्रह्मसभा की कल्पना नहीं की थी। वह चाहते थे कि विभिन्न धर्मों से सम्बधित एकेश्वरवादी लोग ब्रह्मसभा के स्थान का उपयोग करें और इसे अपना मानें। उनकी इच्छा थी कि यह सभी धर्मों में एक निराकार, शाश्वत, अमर और सनातन ईश्वर में आस्था रखने वाले लोगों का मिलन-स्थल बन सके। राममोहन राय खद को सार्वभौम धर्म का अनुयायी मानते थे। उन्होंने अपने एक मित्र को बताया भी था कि उनकी मृत्यु के बाद हिन्दू, मुसलमान और ईसाई अपने-अपने तरीके से उन पर अपना अधिकार जतायँगे। लेकिन वह तो 'सार्वभौम धर्म' में निष्ठा रखते थे। बम्बई प्रेसीडेंसी के उदार सुधारवादी नेता एम० जी० रानाडे ने दस्तावेज पर यह टिप्पणी की थी—"इस दस्तावेज की आध्यात्मिक गहन पवित्रता, सार्वभौमिकता और सहिष्णुता इसके सौंदर्य और परिपक्वता के आदर्श का प्रतीक है। इसके महत्त्व को पूरी तरह समझ पाने में हमारी जनता को सैंकड़ों साल भी लग सकते हैं।" भारत के महान् पत्रकार रामानन्द चटर्जी का मत था—"ब्रह्मसभा की स्थापना करते समय उनका

(राममोहन राय का) उद्देश्य सिर्फ़ यह था कि यह अलग-अलग धर्मों एवं सम्प्रदायों के उन लोगों का मिलन-स्थल बन सके, जो एक साथ मिलकर ईश्वर की आराधना करना चाहते हों।" कलकत्ता में १९०६ में आस्तिक सभा में अपने सभापति-भाषण में ब्रह्मर्षि आर० वेंकटरत्नम् ने कहा—"जैसाकि ब्रह्मसमाज के ट्रस्ट के दस्तावेज में कहा गया है कि यह संस्था कृत्रिम भेद-भाव को तजकर, ईश्वर-भक्ति के प्रति सम्पूर्ण भाईचारे के लिए थी और यह साम्प्रदायिकता अंध-विश्वासों से मुक्त और धर्मांध ईर्ष्या से अछूती थी और जहाँ मनुष्य और मनुष्य का सम्बन्ध है वह नैतिकता, पवित्रता, दानशीलता और उदारता पर ही आधारित हो सकता है। इसीसे मिलन की सम्भावना हो सकती थी।" महान् भारतीय सुधारक केशवचन्द्र सेन ने 'इण्डियन मिशन' के १ जुलाई १८६५ के अंक में लिखा था—"राममोहन राय किसी धर्म या सम्प्रदाय का नहीं था और न ही किसी अनुपम एवं शुद्ध होने की हालत वाले नये सम्प्रदाय या पंथ की स्थापना की आकांक्षा उसमें थी। उसकी यही महत्त्वाकांक्षा थी कि सभी जीवंत धर्मों के अनुयायियों को, जाति, रंग और सम्प्रदाय-भेद को भुलाकर, सत्य और अद्वैत ईश्वर की सार्वभौम उपासना की अनूठी विद्या के माध्यम से एक सूत्र में बाँध दिया जाय। उनका उदार मन किसी एक सम्प्रदाय का न होकर सभी धर्मों का था। किसी एक गिरजाघर का सदस्य न रहने पर भी सभी का सदस्य था। अद्वैत उपासना के सिद्धान्त पर आधारित सार्वभौम गिरजाघर की स्थापना उसका उद्देश्य बन गया। ब्रह्मसमाज के सुप्रसिद्ध उपदेशक सतीशचन्द्र चक्रवर्ती ने अपने २७ सितम्बर १९३३ के धर्मोपदेश में कहा, "राममोहन का विचार था कि उसका समाज किसी नये धर्म-सम्प्रदाय का मन्दिर न होकर सभी पंथों और सम्प्रदायों के अनुयायियों द्वारा अद्वैत ईश्वर की सामूहिक उपासना के माध्यम से देश की जनता को एक जूट कर सके। हम शायद राममोहन की निष्ठा और उसके दृष्टिकोण को पूरी तरह समझ न पाए हों—हिन्दू, मुसलमान और ईसाई अपनी धर्मनिष्ठा को रखकर भी उपासना के माध्यम से एक हो सकते हैं।"

इस देश के अनेक ख्यात व्यक्तियों के विचार इसलिए उद्धृत किये हैं कि यह महत्त्वपूर्ण तथ्य कि ब्रह्मसभा से विकसित ब्रह्मसमाज राममोहन के विचार या प्रयासों का फल नहीं था, स्पष्ट है।

प्रसन्नकुमार टैगोर द्वारा संचालित अखबार 'रिफॉर्मर' के १८३१ के एक अंक में यह छपा—"ब्रह्मसभा १८२८ में स्थापित वेदान्तिक संस्था की स्थापना प्रख्यात और प्रबुद्ध देशवासी बाबू राममोहन राय ने अनेक हिन्दू विचारकों के सहयोग से की···इसकी गोष्ठियाँ हर शनिवार को चित्तपुर रोड पर होती हैं।

यहाँ वेदान्त-प्रवचन और एक-मात्र अद्वैत ईश्वर का भजन होता है···ईसाई या किसी भी मत से सम्बन्धित लोग इसमें शामिल हो सकते हैं।"

महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर की 'तत्वबोधिनी पत्रिका' के अक्तूबर १८४७ के अंक में छपा—"यहाँ कभी-कभी शाम को ईसाई बच्चे ईश्वर का भजन फ़ारसी और अंग्रेज़ी में गाकर करते थे।" इसी पत्रिका में १८५४ के किसी अंक में महर्षि के अनुयायी और प्रसिद्ध लेखक अक्षयकुमार दत्त ने लिखा—"राममोहन राय के जमाने में ब्रह्मसमाज के आचार्य ईश्वर के साथ-साथ उपनिषदों और संस्कृत ग्रन्थों की ऋचाएँ गाकर जनता को उनका अर्थ भी समझाते थे। हिन्दुओं के अलावा विदेशी भी ब्रह्मसमाज में जाकर अपनी भाषा में ईश्वर-भक्ति के भजन गाते थे।

यह तो स्पष्ट ही है कि यदि ब्रह्मसमाज, पहले ब्रह्मसभा, किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्बन्धित होता तो अन्य धर्मों के अनुयायी उपासना के लिए इसका उपयोग न करते।

राममोहन के विदेश जाने के बाद ब्रह्मसभा के कार्यकर्ताओं ने इसे ब्रह्म-समाज कहना शुरू कर दिया। राममोहन ने इंगलैण्ड से अपने बेटे को कलकत्ता में एक उपासना-गीत लिख भेजा और वह चाहते थे कि उनकी यह रचना उनके द्वारा १८३० में स्थापित एकेश्वरवादी गोष्ठी में गाई जाय। ख़त में उन्होंने 'ब्रह्म समाज' शब्द का प्रयोग किया लेकिन उसी ख़त में पहले 'ब्रह्मसभा' और उसके बाद 'ब्रह्मसमाज' का उल्लेख मिलता है। उससे यह साबित होता है कि 'समाज' का प्रयोग किसी साम्प्रदायिक संस्था के अर्थ में न होकर जन-संस्था के अर्थ में हुआ। इसी अर्थ को प्रेषित करने के लिए आज भी 'समाज' का प्रयोग किया जाता है।

ब्रह्मसभा-जैसे आस्तिक संस्थान में वेदान्त-प्रवचन १५ साल से भी अधिक समय तक चला। ब्रह्मधर्म तब तक पंथ के तौर पर पैदा नहीं हुआ था। महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने कुछ विद्वानों की सहायता एवं सहयोग से उपनिषदों और अन्य शास्त्रों का एक संग्रह तैयार कराया। ब्रह्मधर्म पर पहला प्रबन्ध भी १८४१ में ही देखने में आया। इसी वर्ष तत्वबोधिनी सभा की एक गोष्ठी में कहा गया कि वेदान्त पर आधारित धर्म ब्रह्मधर्म में बदल दिया गया है और ब्रह्मधर्म और ब्रह्म चर्च की स्थापना राममोहन की मृत्यु के काफी बाद हुई।

जी० एस० लिओनार्ड द्वारा लिखित 'द हिस्ट्री ऑफ ब्रह्मसमाज—फ्रॉम इट्स राइज़ टू द प्रेजेण्ट डे' (१८७६ में प्रकाशित) में लिखा है—"मैं वेदान्ती निष्ठा को मानता हूँ। 'वेदान्तिक निष्ठा' को बाद में तत्वबोधिनी सभा की

११ पौष १७६८ (सन् १८४६) की एक बैठक में राजनरायण बोस के प्रस्ताव और अक्षयकुमार दत्त के अनुमोदन करने से इसे 'ब्रह्मधर्म' कहा जाना शुरू हुआ।

१८४१ से पहले न तो ब्रह्मधर्म था और इसलिए इसके समारोहों की कोई संहिता भी न थी। ब्रह्मसमाज के नियमों के आधार पर प्रथम ब्रह्म-विवाह २६ जुलाई १८६१ को सम्पन्न हुआ।

सभी धर्मों के अद्वैतवादी लोगों के लिए एक मिलन-स्थल बनाने का ब्रह्म-सभा का महान् स्वप्न राममोहन राय के भारत छोड़ते ही मिट्टी में मिलना शुरू हुआ, और यह उनकी मृत्यु के बाद एकदम खत्म ही हो गया। इसका स्थान ब्रह्मसमाज ने लिया और यह सिर्फ़ हिन्दू अद्वैतवादियों का होकर रह गया। राममोहन राय के स्वप्न की उड़ान को खत्म किया जाना शायद तत्कालीन परि-स्थितियों के विकास के कारण हुआ था। शायद उस समय की ऐतिहासिक माँग ही यह थी। कारण कुछ भी रहे हों लेकिन यह स्वीकार करना होगा कि राम-मोहन राय का विशाल स्वप्न हिन्दू एकेश्वरवादियों के 'ब्रह्म' के संकल्प तक ही सीमित होकर रह गया। इस नवीनीकरण में देवेन्द्रनाथ टैगोर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

राममोहन इंग्लैण्ड में

१५ नवम्बर १८३० को राममोहन इंग्लैण्ड के लिए एलबियन नामक जहाज पर चले और ८ अप्रैल १८३१ को वहाँ पहुँचे। राममोहन की शोहरत उनके पहुँचने से पहले ही बहुत थी। १८१६ में जब वेदान्त पर उनकी अंग्रेज़ी में किताब 'एन एब्रिजमेण्ट ऑफ वेदान्त' प्रकाशित हुई तो इंग्लैण्ड के 'मंथली रिपोज़िटरी ऑफ थियॉलोजी एण्ड जनरल लिट्रेचर' में विस्तृत आलोचना प्रकाशित हुई। जब उनके लिवरपूल पहुँचने के बारे में लोगों को पता चला तो सभी प्रसिद्ध व्यक्ति उनसे मिलने चले आए। प्रसिद्ध इतिहासकार विलियम रस्को ने बीमार होने के कारण अपने लड़के को राममोहन को आमंत्रित करने के लिए उनके पास भेजा। राममोहन रस्को के घर गए और दोनों में बहुत घनिष्ठ ढंग से बातचीत हुई। रस्को के पुत्र ने उस मुलाकात का बहुत ही रोचक विवरण प्रस्तुत किया—"यह साक्षात्कार कभी भुलाया नहीं जा सकता। अभिवादन की रस्म पूरी होते ही राममोहन ने कहा, 'मुझे खुशी और फ़ख्र है कि मैं एक ऐसे व्यक्ति से मिल रहा हूँ जो न सिर्फ़ योरोप में बल्कि संसार-भर में प्रसिद्ध है।' रस्को ने जवाब दिया, 'मैं ईश्वर का आभारी हूँ कि मुझे यह दिन देखने के लिए उसने जिन्दा रखा।'' सालों से पक्षाघात से पीड़ित होने के कारण कुछ समय बाद रस्को का देहान्त हो गया।

राममोहन की इंग्लैण्ड यात्रा के तीन प्रमुख कारण थे। दिल्ली के बादशाह अकबर द्वितीय की ओर से ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट् को स्मरण-पत्र पेश करना। सती-प्रथा के उन्मूलन के लिए हाउस ऑफ कॉमन्स को स्मरण लेख देना। हाउस ऑफ कॉमन्स में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण पर होने वाली बहस के समय वहाँ मौजूद होने की जरूरत। लिवरपूल से वह तत्काल लंदन पहुँचे ताकि सुधार-प्रस्ताव के हाउस ऑफ कॉमन्स में द्वितीय पठन के अवसर पर वहाँ रह पायें। शाम को लंदन पहुँचे। ब्रितानिया के महान् दार्शनिक जेर्सी बेंथम उन्हें मिलने आये तो वह आराम करने के लिए शयनकक्ष में जा चुके थे। यह पता चलने पर बेंथम ने यह पर्चा लिखकर वहाँ छोड़ा—"जेर्मी बेंथम की ओर से

अपने मित्र राममोहन राय के लिए।" वह राममोहन का बहुत आदर करते थे। इसका एक सबूत तो यह है कि एक और जगह ऐसे ही पर्चे में जेर्मी ने लिखा—"बहुप्रंशसित और मानवता की सेवा में संलग्न महान् प्रेमी।"

इंग्लैण्ड पहुँचते ही राममोहन ने बादशाह की मांगों का चिट्ठा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स तथा लंदन के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों को दिया। बादशाह की कुछ मांगें ही पूरी की गईं। १३ फरवरी १८३३ को बादशाह की आय तीन लाख रुपये बढ़ा दी गई।

लंदन में राममोहन प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मिलने और राजनीतिक बहस में बहुत व्यस्त रहे। इंग्लैण्ड के सम्राट् के भाई ड्यूक ऑफ कम्बरलैण्ड ने उन्हें हाउस ऑफ लॉर्ड्स में परिचित कराया। जेम्स सदरलैण्ड से ही यह पता चल पाया कि "सम्राट के तुरन्त आदेश ने ही टोटी पीर्स को इण्डियन जूरी बिल के खिलाफ़ मतदान से रोका।" राममोहन ने दास-प्रथा का उन्मूलक तथा सामान्य शिक्षा के प्रणेता लॉर्ड ब्रोम से घनिष्ठ मित्रता बनाई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशकों ने ६ जुलाई १८३१ को 'सिटी ऑफ लंदन टैवर्न' में भोज के लिए निमंत्रण दिया। चेयरमैन ने सभापति पद सँभाला और राममोहन के स्वास्थ्य एवं मंगलमय जीवन की कामना की। भारतीय समाज के लिए उनकी सेवाओं के लिए उन्हें बधाई दी। विलियम चार के राज्याभिषेक के समय उन्हें यूरोप के सम्राटों के राजदूतों के साथ बैठाया गया। रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ लंदन ने उन्हें अपने वार्षिक समारोह में आमंत्रित किया। वहाँ राममोहन ने पूर्व-देशीय प्रसिद्ध भाषाविद् हेनरी टॉमस कोलब्रूक का आभार-प्रदर्शन किया। राममोहन जन-सेवक समाजवादी रॉवर्ट ओवन से भी मिले। उन्होंने राममोहन को अपनी विचार-धारा से प्रभावित करने का प्रयास किया।

राममोहन के इंग्लैण्ड पहुँचने के समय देश की राजनीतिक स्थिति रिफॉर्म बिल के विरोध के कारण काफी गर्म थी। मार्च १८३१ में प्रस्तुत बिल कमेटी-स्तर पर ही अस्वीकृत हो गया। इसीलिए संसद् का अधिवेशन भी बर्खास्त कर दिया गया था। नया बिल २६ सितम्बर १८३१ के हाउस ऑफ कॉमन्स के अधिवेशन में पारित किया गया। लेकिन अक्तूबर में हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने इसे फिर रद्द कर दिया। तीसरा बिल मार्च १८३२ में हाउस ऑफ कॉमन्स में पारित करके हाउस ऑफ लॉर्ड्स को भेजा गया। इंग्लैण्ड की जनता बहुत उत्तेजित थी। 'लॉर्ड्स' की बिल के बारे में राय की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। इस बार जनसाधारण को मांग को स्वीकार करते हुए 'लॉर्ड्स' ने जून १८३२ में रिफॉर्म बिल पारित किया। आयरलैण्ड और स्कॉटलैण्ड के बारे में भी ऐसे ही

दो बिल पारित हुए। राममोहन ने विलियम रेथबोन को लिखे ख़त में इस बिल के पारित होने पर प्रसन्नता व्यक्त की।

आज़ादी, सह-अस्तित्व और समानता की भावना से प्रेरित फ्रांस के लिए राममोहन के मन में प्रशंसा की भावना थी। उन्हींके शब्दों में, "कला और साहित्य से इतना सम्पन्न और स्वतंत्र संविधान वाला देश।" फ्रांस के सांस्कृतिक हल्कों में ही उनकी रचनाएँ फ्रांस पहुँच चुकी थीं। 'कलकत्ता टाइम्स' के संपादक डी० अकोस्टा ने बलोइ के विशप को रबे ग्रेग्योर के ज़रिए राममोहन की रचनाएँ भेजी थीं इसलिए राममोहन फ्रांस के बुद्धिजीवियों में काफ़ी प्रसिद्ध थे। राममोहन के बारे में एक पुस्तिका में बिशप ने लिखा, "अपनी रचनाओं पर हुए आक्रमण का जिस सादगी से वह जवाब देते, उनके शक्तिशाली तर्क हिन्दू धार्मिक ग्रंथों का विशद ज्ञान इस बात की गवाही हैं कि वह अपने काम के लिए उपयुक्त है। उनका आर्थिक बलिदान उनकी अरुचि का परिचायक है। उसकी सराहना नहीं की जा सकती।"

हम जानते हैं कि एशियाटिक सोसायटी की ७ जून १८२४ की मीटिंग में एसोसिएट प्रतिनिधि की नियुक्ति का मसला उठा। ल्कॉम्ते द हायटरीन और बेरन दं सेकी ने राममोहन का नाम सुझाया। सुझाव एक कमेटी के सुपुर्द कर दिया गया। इसके सदस्य थे ला जूईनाई, बर्नोफ़ और क्लापरॉथ। इस समिति ने इस सुझाव का अनुमोदन किया और उन्हें साहित्यिक के तौर पर लिया जाना तय हुआ। इस समिति की रिपोर्ट परिषद् में प्रस्तुत की गई। राममोहन की राय को एसोसिएट प्रतिनिधि की उपाधि प्रदान की गई। ['इण्डिया एण्ड दी वर्ल्ड' के दिसम्बर १९३३ के अंक में मादाम मॉरिन का लेख]

अवकाश-प्राप्त अंग्रेज अधिकारी श्री लंशलन को एशियाटिक सोसायटी का डिप्लोमा राममोहन राय को स्वयं देने का काम सौंपा गया। इस तरह वह अवैतनिक सदस्य हो गए। १९२४ में पेरिस से प्रकाशित होने वाले 'रेव्यू० एन्साइक्लोपेडिक' में सिस्मॉडि ने राममोहन के बारे में लिखा—"भारत के बारे में अच्छी तरह जानने वाले इस बात से सहमत हैं कि राममोहन प्रबुद्ध एवं कर्मठ व्यक्तियों के सशक्त प्रतिनिधि हैं। राममोहन अपने देशवासियों को एकेश्वरवाद तथा कर्म और नैतिकता के सुमेल का सबक देने के लिए कार्यरत हैं।"

१४ अक्तूबर १८३२ को राममोहन फ्रांस के सम्राट् से मिले। १८३२ के दिसम्बर में श्री पॉथिय के पेरिस में प्रकाशित एक लेख में राममोहन राय के कामों का विस्तृत विवरण दिया गया। समय बीतने पर ब्रिटिश शासकों ने राममोहन को दिल्ली के बादशाह का विशेष प्रतिनिधि मानकर उन्हें राजा की उपाधि दी।

विलियम चतुर्थ से सेंट जेम्स पैलेस में मुलाकात की अनुमति भी राममोहन को ७ सितम्बर १८३१ को दी गई। कुछ समय बाद लन्दन ब्रिज के उद्‌घाटन के अवसर पर राजा ने राममोहन को भोज का निमन्त्रण दिया। उनके सम्मान में लन्दन में कई गोष्ठियाँ हुईं और इनमें जेर्मी बेंथम-जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति भी आए। ब्रितानी यूनीटेरियन एसोसिएशन द्वारा आयोजित एक गोष्ठी में जेर्मी बेंथम की जीवनी लिखने वाले डॉ० बॉरिंग ने राममोहन के विषय में कहा, "मुझे विश्वास है कि उनके विषय में हमारी भावनाएं व्यक्त नहीं होने वाली हैं। मुझे याद है कि एक बार उन्होंने कल्पना की कि अगर प्लेटो सुकरात या मिल्टन उनके सामने आ पायें तो उनकी प्रतिक्रिया क्या होगी, उनके भाव क्या होंगे···राजा राममोहन राय का स्वागत करते हुए मैंने भी पाया कि मेरे अन्दर उसी तरह के भाव उमड़कर आ रहे हैं। मेरे दिमाग़ में समय की दूरी और स्थान की दूरी की तरह ही भाव पैदा करती है। जो व्यक्ति हज़ारों मीलों से चलकर आया है उसका उतना ही स्वागत किया जाना चाहिए जितना हज़ारों साल पहले हमने उन महापुरुषों का किया होता।"

अमेरिका के हॉवर्ड विश्वविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० कर्कलैण्ड ने भी इस गोष्ठी में भाग लिया था। उन्होंने कहा, "राजा अमेरिका में चर्चा का विषय है। वहाँ लोग उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं।" रेवरेण्ड डब्ल्यू० जी० फॉक्स ने भी राममोहन राय का बहुत सम्मान दिया। राममोहन ने इस सम्मान के लिए आभार-प्रदर्शन के तौर पर एक भाषण दिया, जिसके अन्तिम शब्द ये थे, "तर्क और धर्म ग्रन्थ समझ और सम्पत्ति, शक्ति और पूर्वाग्रह के बीच युद्ध की स्थिति है और मैं इस बात को मानता हूँ कि आपकी जीत निश्चित है···आपने अनेक अवसरों पर मुझे जो सम्मान दिया मैं उसे अन्तिम क्षण तक नहीं भुला पाऊँगा।"

आर्थिक चिन्ता और काम के आधिक्य ने राममोहन के सुदृढ़ गठन के बावजूद भी उन पर बुरा असर डाला। उनके आर्थिक संकट का कारण तो उनके कलकत्ता स्थित प्रतिनिधि मेसर्स मेकिन्तोष एण्ड क० तथा लंदन प्रतिनिधि मेसर्स रिकॉर्ड मकिन्तोष एण्ड क० का फेल हो जाना था। उनके मित्रों ने उन्हें आराम के लिए लंदन छोड़कर ब्रिस्टल जाने का सुझाव दिया। १८३३ के सितम्बर में राममोहन डॉ लैंट कार्पेन्टर की संरक्षिका मिस कैसल के रेस्ट हाउस में पहुँचे। डॉ कार्पेन्टर ब्रिस्लट के लेविन मीड़ कैसल के पास्टर थे। राममोहन को मित्रों के साथ ने काफी शांति एवं आराम पहुँचाया। लेकिन १९ सितम्बर को वह अचानक बीमार हो गए। तेज़ बुखार और सिर-दर्द। फिर हालत बिगड़ती गई। डेविड हेयर की बहन मिस हेयर ने उनकी सेवा-सुश्रूषा की, कई प्रमुख चिकित्सक भी

सुधार न सके। हालत और भी बिगड़ती रही और २७ सितम्बर को राममोहन का देहान्त हो गया।

उनका उपचार करने वाले डॉ० एस्टलीन ने उनकी अंतिम घड़ियों के बारे में लिखा है—"खूबसूरत चाँदनी रात थी। खिड़की की एक ओर मैं, श्री हेयर और मिस केडल गाँव की शांत आधी रात का नज़ारा देख रहे थे। दूसरी तरह वह अजीब ढंग से आखिरी साँस ले रहा था। इसे मैं भूल नहीं सकता। मिस हेयर को अब कोई आशा न थी, वह राजा के पास तक जाने का साहस गँवा चुकी थीं। पास ही पड़ी एक कुर्सी पर सिसक रही थीं। अढ़ाई बजे श्री हेयर ने मेरे कमरे में आकर दुखद समाचार सुनाया। सवा दो बजे उन्होंने अंतिम साँस ली।" और मिस कलेक्ट ने लिखा, "मरते समय उनके होंठों पर सिर्फ़ एक शब्द था—ओम्। इससे यही लगता है कि मौत के अकेलेपन और ज़िन्दगी की भीड़ में भी उनकी आत्मा का जाप ही मुख-धर्म था।"

१८ अक्तूबर १९३३ को दो बजे के करीब उन्हें स्टेप्लटन ग्रोव में दफ़नाया गया। उस समय को मेरी कार्पेन्टर ने हृदय-वेधक ढंग से बताया है, "तैयारियाँ लम्बी चौड़ी की गईं। लंदन से श्री हेयर आए। स्टेप्लटन ग्रोव पर आने के लिए सिर्फ़ इन्हीं लोगों को कहा गया था जो राजा से व्यक्तिगत तौर पर परिचित थे। मिस कैसल के संरक्षक, हेयर परिवार, बेटी की तरह सेवा करने वाली लड़की। गोद लिया पुत्र ब्राह्मण नौकरों के साथ। डॉक्टर एस्टलीन और उनकी पूज्य माँ तथा छोटी बहन, डॉक्टर जेर्टार्ड, प्रसिद्ध जॉन फॉस्टर, मेरे पिता और मैं। बाद दोपहर उनके नश्वर शरीर को धारण करने वाले ताबूत को कब्र की ओर ले जाया गया। ताबूत के पीछे राजा के परिचित जन थे। ताबूत ले जाने वाले छायादार पेड़ों के नीचे से सही स्थान पर पहुँचे। दिलो-दिमाग़ पर छाई भावनाओं को किसी ने व्यक्त तक नहीं किया। जॉन फॉस्टर ने कहा—इतने अधिक दुःख में कोई बोल ही क्या सकता था।"

सन् १८४२ में राममोहन के अनुयायी देवेन्द्रनथ टैगोर इंगलैण्ड पहुँचे तो उन्होंने ताबूत स्टेप्लटन ग्रोव से निकलवाकर आर्नोसवेल में गड़वा दिया। १८४४ में भारतीय रीति के अनुसार एक स्मारक-इमारत बनाई गई।

राममोहन का प्रभाव

राममोहन ने विदेशियों को किस क़दर प्रभावित किया। यह उनके अंग्रेज़ी जीवनी-लेखक सोफी डबसन कॉलेट ने लिखा है, "राममोहन इतिहास में एक जीवित पुल की तरह है जिस पर से भारत अपने अलिखित इतिहास से भविष्य की ओर जाता है। पुरातन जातिवाद और वर्तमान मानवता, अंध विश्वास और ज्ञान, बहुदेववाद और एकेश्वरवाद के नीचे की खाई पर वह पुल थे। अपने व्यक्तित्व में कई तरह के दुःख, रीतियों के परस्पर विरोधाभास और अवश्यम्भावी ज्ञानदीप्ति के रूप में वह देशवासियों के मध्यस्थ थे। कुल, धर्म और मानवता के किसी विशिष्ट मिलन से उत्पन्न भावनाओं का उनमें योग था। जानने की स्वतन्त्रता, ज्ञान की पिपासा, मानवता, पवित्र और चुनिंदा नीति, भूत के प्रति एक टिप्पणीयुक्त सम्मान और विद्रोह के प्रति जागरूक विराग का वह मिश्रण थे, पर राममोहन के आन्दोलनों का केन्द्रबिन्दु धर्म ही रहा। भारत के आन्दोलनों के इतिहास में यह बात अभी सिद्ध होनी बाकी है। अपनी घुमक्कड़ी के दौरान धर्म ने उन्हें बचाया। पुरातन भारतीयपन की वह अनुपम भेंट थे। यह बात और ही है कि वह जब थे तो नये का प्रभाव बढ़ रहा था। जिन शक्तियों को कोई नहीं चाहता, राममोहन उनसे जुड़े हुए थे। राजा वह अचानक नहीं हुए थे और यूरोपीय सभ्यता का अस्थिर मिलन उनमें नहीं था। अगर आक्षेप के बिना बात कहीं जाय तो राममोहन राय एक यूरेसियन थे, अगर उनके विकास का सही अध्ययन करें तो पता चलता है कि वह पुरातन काल से पश्चिम की तरफ नहीं बल्कि उसमें से होती हुई एक ऐसी सभ्यता की ओर ले जाते हैं, जो न पूर्व की है, न पश्चिम की ही। यह दोनों से अलग एवं महान् है। धर्म की वजह से ही एक निरन्तरता बनी हुई है। उनके विकासशील आंदोलन की असली शक्ति तो उनका धर्म था। यही था जिसने उनके आन्दोलन को दिशा प्रदान की। उसे तेज़ भी किया और बाधा भी बना।

"राममोहन इस तरह एक ऐसे नए भारत का एक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं जो उत्साहवर्धक तथा शिक्षा देने वाला भी है। पश्चिम के जनतांत्रिक राज्यों को

वह बहुत मूल्यवान अभिसूचक मानते हैं। इससे यही सूचना मिलती है कि हमारे ब्रितानी साम्राज्य पर आधारित होने के बावजूद भी यह उसके मार्ग को प्रभावित कर सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि विधि ने भारत के भाग्य में कुछ भी गढ़ा हो लेकिन भविष्य राममोहन राय के जीवन-चरित पर निर्भर करता है। यह केवल भारत ही नहीं, अब तो पूर्व-पश्चिम के द्वार पर है। यूरोपीय और एशियायी मानव-उन्नति के स्रोत पहले भी कई बार मिल चुके हैं, अब भी मिलन की ओर बढ़ रहे हैं। पुराने विभागों से विदा लेते हुए मानव की प्रगति के महानद की ओर बढ़ रहे हैं। आने वाली सुबह उसीके जीवन पर प्रकाश डालती है जिसकी गाथा हमने अभी तक पढ़ी है। वह आने वाले परिवर्तन का पैगम्बरी न सही अग्रगामी संकेत जरूर करता है।

आधुनिक भारत पर उनके जीवन के असर के बारे में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बहुत खूबसूरत जिक्र किया है; "किसी भी विरले व्यक्तित्व को जो ऐसे समय पर उत्पन्न हो जबकि उसका देश स्वयं को बरबाद करने के बाद अपने-आपको नकार रहा हो तो उसे स्वयं को पहचानने व सम्माननीय बनाने में निश्चय ही समय लगता है। उसकी पुकार असंगत और न्यायोचित प्रतीत नहीं होती, क्योंकि लोगों ने अपने साजों के तार खुद ही ढीले छोड़ दिए होते हैं और उन्हें संगीत के सत्यं शिवं सुन्दरम् से मिलाने का प्रयत्न उनके लिए फलदायक प्रतीत नहीं होता।

"राममोहन राय एक ऐसे व्यक्ति थे जिनको देश ने बेहरमी से नकार दिया था, जिन्होंने अपनी महान् विरासत को याद करने की जिम्मेदारी को भुला दिया और अन्धविश्वास में लिप्त अपने पतन के साथ चिपका रहा। परन्तु समय विलक्षण था और इसलिए उस आक्रोश व खीझ के बीच उनका आगमन बहुत जरूरी था। वह इस परवर्तित मौसम का प्रतिनिधित्व करने आए थे जो लम्बे सूखे के बाद आता है और अपने साथ वर्षा की महक की फुहारों से अमूल्य निधि बिखेर जाता है। इससे सूखी और झुलसी हुई मन-भूमि को जीवन मिलता है, यह मदहोश कर देने वाला प्रतीत होता है और इसकी विस्तृत जानकारी के लिए उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक फसल पककर कट नहीं जाती और कृषि-संसार उसे स्वीकार नहीं कर लेता। राममोहन अपने देशवासियों में उस समय अवतरित हुए जब उनके चारों ओर का वातावरण उन्हें पूर्ण तथा अस्वीकार करता था। फिर भी वह ऐसे व्यक्ति सिद्ध हुए जिसकी हमारे इतिहास को गहन अंधकार में प्रतीक्षा थी। ऐसा व्यक्ति, जो अपने जीवन में देश के प्रति मिशनरी भावना और आत्मीय रूप से पूर्णरूपेण महानता का प्रतिनिधित्व करे, उनका एक अकेला एकाकी जीवन था, किन्तु उनके साथ परम सत्य और असीम साहस था,

जो उसके लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ।

"यह वास्तव में गहन आश्चर्य का विषय है कि ऐसे समय में जब छोटे-छोटे रजवाड़े भारत में थे तो राममोहन राय तब तक जिए, उस जनता के लिए वंऐसा उपहार लाए जिसे वह समझ नहीं सकी। ऐसा मस्तिष्क, जो अपनी महान् सूझ-बूझ के साथ पूर्व और पश्चिम का सम्मिलन था और जिसने विभिन्न महत्वाकांक्षाओं को सम्मिलित किया; ऐसा मस्तिष्क जिसने विभिन्न सभ्यताओं के संगम को पूर्णतः समझा, जिससे मानवता के महान् युगारम्भ हुए उनके समक्ष अर्वाचीन युग के अनेक आयाम और अनुभूतियां पूर्ण रूप से स्पष्ट अंकित थीं। यही वह व्यक्तित्व था जिसने वास्तविक रूप से अपने देश को इस तथ्य से परिचित कराया।"

•

महत्त्वपूर्ण तारीखें एवं घटनाएँ

१७७२ : २२ मई को राधानगर में जन्म।
१८०९ : रंगपुर के कलक्टर जॉन डिग्बी के अधीन दीवान पद पर नियुक्ति।
१८१५ : कलकत्ता में जीवन प्रारम्भ।
आत्मीय सभा की स्थापना।
बंगला में वेदान्त ग्रंथ का प्रकाशन।
१८१६ : 'एब्रिजमेंट ऑफ द वेदान्त' या 'वेदान्तसार' लिखी और बंगला हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ी में प्रकाशन।
बंगला और अंग्रेज़ी में केनोपनिषद् और ईशोपनिषद् के अनुवाद।
१८१७ : हिन्दू कॉलेज की स्थापना।
मंडूकोपनिषद् और कठोपनिषद् का बंगला में अनुवाद।
१८१८ : सती-प्रथा पर प्रथम आलेख।
१८२० : 'द प्रिसेप्ट ऑफ जेसुस' का प्रकाशन।
१८२१ : रेवरेण्ड विलियम एडम के एकेश्वरवाद का स्वीकार।
'सम्वाद कौमुदी' का प्रकाशन आरम्भ।
१८२२ : 'मीरात-उल-अखबार' का प्रकाशन।
एंग्लो-हिन्दू स्कूल की शुरूआत।
'ब्रीफ़ रिमावर्स ऑन एनशिएंट फिमेल टाइम्स' का प्रकाशन।
१८२३ : सुप्रीम कोर्ट को प्रेस अध्यादेश के खिलाफ मेमोरेंडम।
'मीरात-उल-अखबार' का प्रकाशन बन्द।
शिक्षा को उदार एवं ज्ञान-भरपूर बनाने के लिए अमहर्स्ट को खत।
१८२४ : सोसाइटी एशियाटिक पेरिस के सदस्य चुने गए।
१८२६ : वेदान्त कॉलेज की नींव।

१८२८ : कलकत्ता में लॉर्ड विलियम बैंटिक। का गवंनर जनरल के रूप में आगमन।
ब्रह्मसभा की स्थापना।
ज्यूरी के मुकद्दमे में वकालत।

१८३० : इंग्लैण्ड रवाना, नवम्बर में।

१८३१ : अप्रैल में इंग्लैण्ड पहुंचे।
जेर्मी बेंटम को लंदन में मिले।
ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भोज।
किंग विलियम चतुर्थ के सामने पेश हुए।
टेलीराण्ड को पारपत्र खत्म करने के लिए ख़त।

१८३२ : रिफॉर्म बिल का समर्थन, वह पारित हुआ।
पेरिस यात्रा, फ्रांस के किंग लुई फिलिप से मुलाकात।

१८३३ : स्टेप्लैटन हिल के लिए लंदन छोड़ा।
२७ सितम्बर को देहान्त।

ग्रन्थ-सूची

इस संक्षिप्त ग्रन्थ-सूची में राजा राममोहन राय द्वारा बंगला और अंग्रेज़ी में लिखे सामूहिक संस्करणों का ज़िक्र है। इन्हीं भाषाओं में उन पर लिखी गई पुस्तकें भी इसमें शामिल की गई हैं। राममोहन से सम्बन्धित पुस्तकों के लिए पाठकों को 'ए लिस्ट ऑफ राजा राममोहन रायज़ पब्लिकेशन्स इन डिफ़रेण्ट लैंग्वेजेज' (विभिन्न भाषाओं में राजा राममोहन की कृतियों की एक सूची) देखनी चाहिए। यह सूची दिलीपकुमार विश्वास और प्रभातचन्द्र गांगुली ने तैयार की हैं। इसमें 'कलेक्ट्स द लाइफ़ एण्ड लैटर्स ऑफ राजा राममोहन' भी शामिल है। दोनों महानुभावों ने इसका सम्पादन भी किया है। सन् १९६२ में 'साधरण ब्रह्मसमाज' द्वारा इसका प्रकाशन हुआ था।

बंगला

राममोहन की बंगला कृतियों का पहला संकलित संस्करण अन्नदाप्रसाद बनर्जी द्वारा सन् १८३९ में हुआ था। बाद में निम्नलिखित प्रकाशन हुए।

'राजा राममोहन राय प्रणीत ग्रन्थावली' राजनारायण बसु और अन्नदा चन्द्र वेदान्त वागीश द्वारा सन् १८८०, कलकत्ता में सम्पादित।

'राजा राममोहन रायेर संस्कृत ओ बंगला ग्रन्थावली, सन् १९०५ पाणिनि कार्यालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

'राममोहन ग्रन्थावली' १३५९ विक्रमीय संवत्, कलकत्ता में ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी और सजनीकान्त दास द्वारा सम्पादित।

अंग्रेज़ी

राजा राममोहन राय की अंग्रेज़ी कृतियों का एकत्र संकलन, जो अब तक 'प्रकाशित हुआ है इस प्रकार है—

'द इंगलिश वर्क्स ऑफ राजा राममोहन राय' जोगेन्द्रचन्द्र घोष द्वारा

सम्पादित, ईशानचन्द्र बोस द्वारा संकलित और प्रकाशित अंक १। ओरयिण्टल प्रेस कलकत्ता सन् १८८५।

'द इंगलिस बक्र्स ऑफ राजा राममोहन राय' जोगेन्द्रचन्द्र घोष द्वारा सम्पादित, सन् १९०१, कलकत्ता में श्रीकान्त राय द्वारा तीन अंकों में पुनः प्रकाशित।

'द इंगलिश वर्क्स ऑफ राजा राममोहन राय' कुछ अतिरिक्त पत्र और तुहफ-उल-मुवाहिदीन का अंग्रेजी अनुवाद। रामानन्द चटर्जी द्वारा एक भूमिका। पाणिनि कार्यालय, इलाहाबाद सन् १९०६।

'द इंगलिश वर्क्स ऑफ राजा राममोहन राय' कालिदास नाग और देवज्योति बर्मन द्वारा सात भागों में सम्पादित एक से छः भाग तक अभी उपलब्ध, साधरण ब्रह्मसमाज कलकत्ता द्वारा सन् १९४५-५१ में प्रकाशित।

INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 54736
Date 9.7.76
SIMLA.

साहित्य अकादेमी राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था है, जिसकी स्थापना भारत सरकार ने सन् १९५४ में की थी। यह एक स्वायत्त संस्था है, जिसकी नीतियाँ अकादेमी की परिषद् द्वारा निर्धारित होती हैं। परिषद् में विभिन्न भारतीय भाषाओं, राज्यों और विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि होते हैं। अकादेमी के प्रथम अध्यक्ष थे श्री जवाहरलाल नेहरू और वर्तमान अध्यक्ष हैं डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या।

साहित्य अकादेमी का प्रमुख उद्देश्य है भारतीय भाषाओं की साहित्यिक गतिविधियों का समन्वयन और उन्नयन करना और अनुवादों के माध्यम से विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध उत्तम साहित्य को समग्र देश के पाठकों तक पहुँचाना। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्य अकादेमी ने एक विस्तृत प्रकाशन-योजना हाथ में ली है। इस योजना के अन्तर्गत जो ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं उनकी सूची साहित्य अकादेमी के विक्रय-विभाग से प्राप्त की जा सकती है।